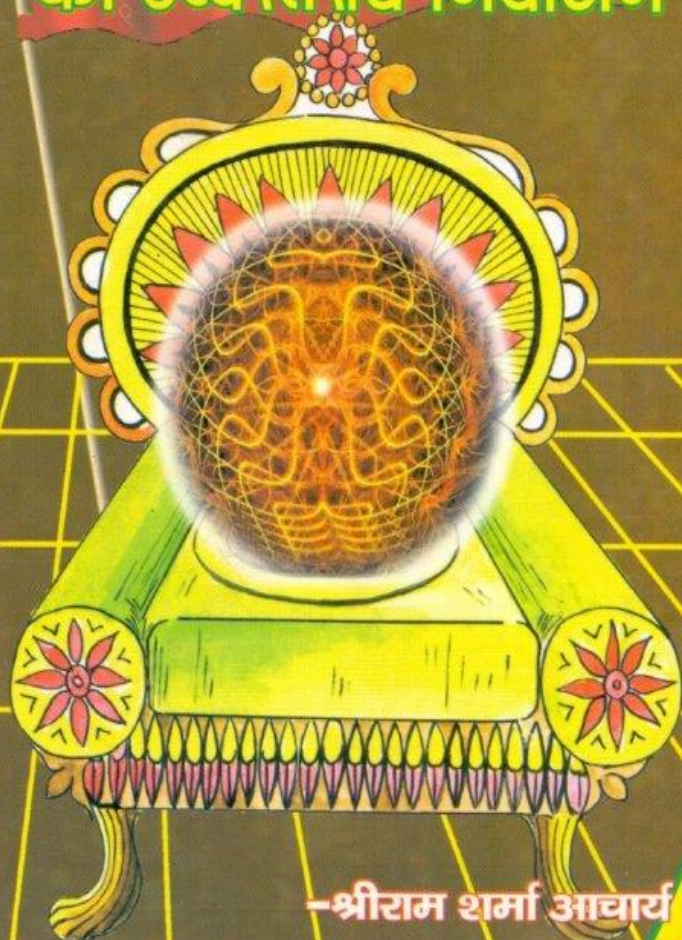


# आत्म शक्ति

## का उच्चस्तरीय नियोजन



—श्रीराम शर्मा आचार्य

# आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन



लेखक :  
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य



प्रकाशक :  
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००



पुनर्मुद्रित सन् २०१०

मूल्य : ९.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

सर्वाधिकार सुरक्षित

पुनर्मुद्रित सन् २०१०

मुद्रक

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

फोन : (0565) 2530128, 2530399

# जीवन संपदा का सदुपयोग

मनुष्य जब जन्म लेता है तो अपने जीवन की अवधि भी साथ लेकर आता है। जन्म और मरण भगवान के हाथ है। यह संपदा उसकी दी हुई है। इच्छानुसार कोई चाहे जब जन्म नहीं ले सकता और मरना भी कदाचित ही कभी स्वेच्छापूर्वक होता है। आत्महत्या तक लोग चाहे जब नहीं कर सकते। वैसा आवेश चढ़ा हो तो भी अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते हैं कि मरने की तैयारी भी एक कोने में रखी रह जाती है। इसके विपरीत ऐसा भी होता है कि कोई सशक्त कारण न होने पर भी मनुष्य चाहे जब लुढ़क जाता है। देखने वाले आश्चर्य करते रह जाते हैं कि यह सब अनायास ही आकस्मिक रूप से कैसे हो गया? इच्छापूर्वक मरना कोई नहीं चाहता, पर जब समय आ जाता है तो कोई अनायास ही कहीं से घसीट ले जाता है।

जीवन का अर्थ है—समय। जो जितने समय जीता है, उस समय को ही जीवन कहते हैं। यह कितना लंबा होगा यह कोई नहीं जानता। न जन्म अपने हाथ की बात है और न मरण। इसे ईश्वर के अनुग्रह के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? प्राणियों में अगणित ऐसे हैं जो घास-पात की तरह, मक्खी-मच्छरों की तरह जन्मते और मौसम का दबाव पड़ने जैसे किन्हीं कारणों से उसे गँवा बैठते हैं। मनुष्य जीवन ही एक ऐसी सत्ता है, जिसे भगवान के बाद दूसरे नंबर की कहा जा सकता है। यह जिन्हें जितने समय के लिए मिला, उन्हें अपने को उतने ही समय का सौभाग्य काल मानना चाहिए।

यह सौभाग्य अकारण ही नहीं मिला है। ज्यों-त्यों करके जीने-मरने के लिए नहीं। पेट और प्रजनन भी इसका उद्देश्य नहीं है। वासना-तृष्णा की बड़ी-चढ़ी अँगुलियाँ नोंचती तो रहती हैं, पर वस्तुतः वह इतने भर के लिए बना नहीं है। कीमती वस्तुएँ किन्हीं विशेष उद्देश्य के लिए, विशेष प्रयोजनों के लिए मिलती हैं। कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, शासनाध्यक्ष आदि हर किसी को नहीं बना दिया जाता है। यह पद जिन्हें सौंपा जाता है, उनकी योग्यता, दक्षता और भावना को जाँच-परख लिया जाता है और साथ ही यह भी ध्यान रखा जाता है कि सौंपा गया दायित्व ठीक तरह निभ रहा है या नहीं। नर-पशु स्तर के प्राणी तो अपनी समय संपदा को किसी भी प्रकार उपयोग करते और गँवाते रहते हैं। उस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, पर जिनके कंधों पर बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं, उन पर सदा तीखी नजर रखी जाती है और देखा जाता है कि कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही। बड़े लोगों की छोटी भूलें भी बड़ी समझी जाती हैं और उसके लिए दंड-उत्पीड़न भी बड़ा ही दिया जाता है। सेनाध्यक्ष की छोटी-सी भूल भी समूचे राष्ट्र की सुरक्षा को खतरे में डाल सकती है और उतने भर के लिए उसे कोर्ट मार्शल के लिए पेश होना पड़ता है, मृत्यु दंड तक मिल सकता है, जबकि कीट-पतंगे, पशु-पक्षी आदि कुछ भी उचित-अनुचित करते रहते हैं। उनकी स्थिति हेय होने के कारण कोई उनकी ओर विशेष ध्यान भी नहीं देता।

मनुष्य जन्म को इस संसार का ऊँचे-से-ऊँचा पद कहा जा सकता है। उसे जैसी शारीरिक और मानसिक क्षमता मिली है, उसे असाधारण एवं अद्भुत ही कहा जा सकता है। वह यदि उसका सदुपयोग करे तो देवता की भूमिका निवाहने में पूरी तरह समर्थ हो सकता है। महामानव, देवमानव, आदर्श, अनुकरणीय, आदरणीय, अभिनंदनीय आदि किसी भी स्तर का वह तनिक-सी सावधानी बरतने पर हो सकता है। साथ ही यह भी हो सकता है कि यदि वह प्रमाद बरतता है, तो पशु-पिशाच से भी गए-गुजरे स्तर तक पहुँच सकता है। इसलिए उसकी सावधानी-असावधानी, जिम्मेदारी-गैर जिम्मेदारी असाधारण महत्त्व रखती है, कारण कि

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / ४**

इस व्यवहार का न केवल उस पर प्रभाव पड़ता है, वरन असंख्य मनुष्यों और प्राणियों को उन प्रवृत्तियों का भला-बुरा परिणाम भोगना पड़ता है। ऐसी दशा में उसकी कृतियों का दंड-पुरस्कार बढ़-चढ़कर मिले तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पाप-पुण्य के अनेक स्वरूप हो सकते हैं, पर मनुष्य के लिए इतना ही पर्याप्त है कि उसने अपनी निर्धारित जिम्मेदारियों को निबाहा या नहीं।

मनुष्य को इस विश्व उद्यान का कुशल माली बनकर रहने की जिम्मेदारी विशेष रूप से सौंपी गई है। माली यदि हर समय सतर्कता बरते और जिम्मेदारी निबाहे, तो बगीचे को सदा-सर्वदा हरा-भरा और फलता-फूलता रख सकता है, इस व्रत का श्रेय और पुरस्कार भी उसे लगे हाथों मिलता रहता है, पर साथ ही यह बात भी है कि यदि वह उपेक्षा बरते, सौंपे हुए काम की ओर ध्यान न दे, तो सौंपा हुआ उद्यान कुछ ही समय में बुरी तरह बरबाद हो सकता है और उस प्रमाद के लिए उसे निर्माणकर्त्ता की ओर से कड़ा दंड भी मिल सकता है।

कृमि-कीटक जैसे क्षुद्र प्राणियों के जिम्मे कोई बड़ा उत्तरदायित्व नहीं होता, इसलिए उन्हें दंड-पुरस्कार से भी बचे रहना पड़ता है, पर मनुष्य तो प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। उसका स्रष्टा के उपरांत संरक्षक का दूसरा उत्तरदायित्व है। इसलिए उसकी छोटी सी भूल भी असह्य और अक्षम्य मानी जाती है। इस तथ्य को भलीभाँति समझ रखना हर विचारशील का कर्त्तव्य है।

पशु-पक्षी पूरे दिन परिश्रम करते हैं, तब कहीं शरीर यात्रा की व्यवस्था कर पाते हैं, पर मनुष्य की स्थिति सर्वथा विपरीत है। उसे इतना छोटा पेट मिला है कि एक-दो घंटे के शारीरिक श्रम से ही उसे भरा जा सकता है। अन्य आवश्यक समझी जाने वाली वस्तुएँ भी इतनी कम अपेक्षित होती हैं कि शारीरिक और मानसिक श्रम का सदुपयोग करके उनकी पूर्ति सहज ही कुछ घंटे की तत्परता से करता रह सकता है। इसके बाद जो समय बचता है, वह इतना अधिक बच जाता है कि ईश्वर के सौंपे हुए कामों में से अधिकांश की पूर्ति वह भली प्रकार करता रह

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन १५**

सकता है। देखा भी यही जाता है कि ऋषि, मनीषी, साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजक, लोकसेवी स्तर के मनुष्य उच्चस्तरीय कर्तव्यों की पूर्ति भली प्रकार करते रहते हैं। साथ ही उनके पास इतनी क्षमता, दक्षता शेष बची रहती है कि उनका सदुपयोग करने पर वह इतना कुछ कर सकते हैं कि अपने को सब प्रकार धन्य बनाने के अतिरिक्त इस विश्व वाटिका को सुरम्य-सुसज्जित बनाने के लिए बहुत कुछ करते रह सकें और स्रष्टा के उस प्रयोजन की पूर्ति कर सकें, जिसके लिए कि उसे यह सुरदुर्लभ मनुष्य शरीर उपलब्ध कराया गया है।

समय को जीवन के सार्थक-निरर्थक प्रयोजनों में लगाते रहने की मनुष्य को समुचित सुविधा मिली हुई है। उसमें सांसारिक व्यवधान कदाचित ही कभी कुछ आता हो। अपनी आंतरिक निष्कृष्टता ही ऐसी अड़चन है, जिसके कारण उच्चस्तरीय आदर्शों का परिपालन करते न बन पड़े। मानवी गरिमा को गिराने वाले हेय कर्मों में निरत होने के लिए बाधित होना पड़े। यही वह कारण है, कि समर्थ होते हुए भी मनुष्य को वासना, तृष्णा, अहंता जैसे हेय प्रयोजनों में निरत होना पड़ता है। इन हेय कर्मों में एक भी ऐसा नहीं है, जिसको अपनाए बिना कोई काम रुकता हो, जीवन क्रम में कभी कोई अड़चन आती हो। इंद्रियाँ तो जीवन के उच्चस्तरीय प्रयोजनों की पूर्ति के लिए हैं, पर उस बुद्धि को क्या कहा जाए, जो इन नव चेतना केंद्रों को वासना के साथ जोड़कर अपने को खोखला करती रहती है। दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का सरंजाम स्वयं जुटाती है। यदि विषय वासनाओं से बचे रहा जा सके तो शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को लंबे समय तक अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकता है। ओजस और तेजस से मनुष्य भरा-पूरा रह सकता है। जीवनी शक्ति के भंडार से भरा-पूरा रह सकता है।

तृष्णा एक प्रकार की सनक है, जिसे अर्ध-विक्षिप्तता भी कह सकते हैं। आवश्यक वस्तुओं के संग्रह का एक दृष्टि से औचित्य भी है, पर जब असाधारण मात्रा में अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह किया जाए, तो उसे भार वहन ही कहा जा सकता है। तृष्णा की

### **आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /६**

ललक को इसी स्तर का समझा जाना चाहिए। उससे परिचितों तक के लिए बचते रहने की बात भी बनती कहाँ है? ईर्ष्या, द्वेष, दुर्व्यसन, अनर्थ, अनाचार जैसी व्याधियाँ भी एकत्रित होकर लद लेती हैं। तृष्णा की पूर्ति अनाचार अपनाए बिना सीधे सरल मार्ग से होती ही नहीं। इस व्यर्थ के प्रपंच में भटकने में किसी का कोई हित साधन नहीं हो सकता।

मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह एक साधारण जीवधारी है। उसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं, जिसके लिए अहंता का उन्माद वहन करना पड़े। नम्रता, सज्जनता और शालीनता का एक युग्म है। सादा जीवन के साथ ही उच्च विचारों का तारतम्य जुड़ता है। तृष्णाग्रस्त व्यक्ति अपने को असाधारण सिद्ध करना चाहता है। बड़प्पन की अहमन्यता में अपराधियों जैसी हरकतें करता है। इसका प्रतिफल रोष, आवेश, आडंबर, अनाचार जैसे दुर्व्यसनों के रूप में सामने आता है। यही हैं वे महत्त्वाकांक्षाएँ, जो साधारण से जीवधारी मनुष्य को उन्मादी जैसे आचरण करने के लिए बाधित करती हैं और समाज का बहुमूल्य समय इन्हीं जाल-जंजालों में खपा देता है।

इसी को कहते हैं सिद्धांत को त्यागकर कीचड़ भरे तालाब में कूद पड़ना। समय का उपयोग आखिर कहीं न कहीं तो होता ही है। चिंतन न तो शरीर को खाली रख सकता है और न मन-मस्तिष्क को। यदि उन्हें उपर्युक्त कर्तव्यों से वंचित किया जाएगा, तो फिर उन पर शैतान लद कर रहेगा। ईश्वर प्रदत्त धर्म-धारणा और सेवा-साधना के, उपासना के कर्तव्य पालन की उपेक्षा करके यदि कोई वासना, तृष्णा और अहंता जैसे दुष्कर्मों को अपनाता है, तो उसके संबंध में यही कहा जा सकता है कि बुद्धिमत्ता का परित्याग करके मूर्खता को अपनाया गया, श्रेय, सौजन्य का उपहार छोड़कर दुर्बुद्धि और दुष्टता को अपनाकर अपने को दुर्गति के गर्त में गिराया गया।

समझदारी का उदय होने पर उच्चस्तरीय सद्भावनाएँ उभरती हैं, शालीनता अपनाने के लिए बाधित करती हैं और पुण्य-परमार्थ की दिशा में कदम बढ़ाते चलने के लिए अग्रसर करती हैं। संसार में इतने अधिक दुःख हैं कि उनमें से बहुतों से हम आसानी से

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन १७**



बहुत कुछ बच सकते हैं। अभाव, दारिद्र्य और पिछड़ेपन का इतना बाहुल्य है कि उस त्रास से पीछा छुड़ा सकने की किसी न किसी प्रकार कुछ न कुछ सहायता बन ही पड़ सकती है। यह रीति-नीति ऐसी है, जिसे जिस अनुपात में अपनाया जा सके, उतना ही आत्म संतोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह का लाभ हाथों-हाथ मिलता है।

मनुष्य के एक हाथ में स्वर्ग है, दूसरे में नरक। इनमें से स्वेच्छापूर्वक किसी को भी, कितनी ही मात्रा में अपनाया जा सकता है। हम उत्थान और पतन की ओर जाने वाली दो सड़कों के बीच चौराहे पर खड़े हैं। किस दिशा में चलना है, यह व्यक्ति की अपनी समझ के ऊपर निर्भर है। पतन को लक्ष्य बनाना है या उत्थान के श्रेय पथ पर चलना है, यह निर्णय करना पूरी तरह अपने हाथ में है। विवशता तो मात्र उनके प्रतिफल भोगने भर की है। किसको क्या चाहिए? कौन इस मेले में से क्या खरीदेगा? यह निर्धारण पूरी तरह अपनी इच्छा, आकांक्षा, चेष्टा एवं प्रयत्नशीलता पर निर्भर है। भगवान ने इतनी स्वतंत्रता हर किसी को दी है कि वह किसी भी दिशा का चयन करे और पैरों चलकर किसी भी लक्ष्य तक जा पहुँचे। मनुष्य जीवन मुक्त है। यह उसकी इच्छा, आकांक्षा है कि यदि उसे उन्माद सूझे तो अपने हाथों में हथकड़ियाँ, पैरों में बेड़ियाँ और कमर में रस्सियाँ कसकर इस भव-सागर में डूबता-तैरता रहे।

समय भगवान द्वारा उदारतापूर्वक प्रदान किया गया है। यह उसी की धरोहर है। इसे किस प्रयोजन में लगाया जाय, इसका भी कार्य नियोजन और निर्धारण है। प्रगति का द्वार सभी के लिए खुला है। उल्लास और उत्साह का बाहुल्य हर किसी के भंडार में भरा पड़ा है। यह अपनी ही इच्छा है जो भ्रष्टता, उद्दंडता, दुष्टता पर उतरती और दुर्गति या सद्गति का वरण करती है। सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन अपेक्षाकृत सरल है, जबकि दुष्प्रवृत्ति की कँटीली झाड़ियों में भटकते रहना और काँटे चुभने, ठोकरें खाने का त्रास अपनाना न तो उचित है और न आवश्यक। इस संसार में श्रेष्ठता की फसल सृजेता ने पहले से ही बो रक्खी है,

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन १८**

उसे सींचने और रखवाली करने की चेष्टा भर से वह सत्परिणाम हस्तगत हो सकता है, जिससे कोठे भर अनाज बटोरा और संपत्ति का अधिष्ठाता कहलाया जा सके।

काँटे बोना और विष बेल उगाना दोनों ही कठिन हैं। उनके लिए किया गया श्रम भी कम कष्ट साध्य नहीं है। इतने पर भी प्रतिफल हर दृष्टि से दुःखदायी ही है। भगवान ने मनुष्य को तीखी, पैनी और दूरदर्शी बुद्धि ही दी है, साथ ही शरीर-संरचना की भी ऐसी व्यवस्था की है, जिसके सहारे अपने और दूसरों के लिए एक से एक बढ़कर सत्कर्म करते बन सकता है। चारों ओर वातावरण ऐसा विनिर्मित है, जिसमें अवांछनीयताओं से जूझ कर अपना शौर्य-पराक्रम कमाया, श्रेय पाया और सुख-शांति से भरा-पूरा मार्ग अपनाया जा सके। कहीं किसी का ऐसा हस्तक्षेप भी नहीं है, जिसमें बुरे का चयन और भले का प्रतिबंध लगने जैसी कहीं कोई अड़चन हो। स्वतंत्रता का ऐसा लाभ अपने को उपलब्ध है, जिसमें कि किसी भी दिशाधारा को अपनाया जा सके और उनके सर्वविदित परिणामों में से किसी एक का स्वेच्छापूर्वक वरण किया जा सके।

ऐसा कम ही होता है जो अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारता हो। साफ-सुथरे राजमार्ग को छोड़कर कँटीली झाड़ियों में भटकता हो। ऐसे कम ही होते हैं, जिनका रुझान ऊँचे-चढ़ने की अपेक्षा नीचे गिरने का होता हो, यश को छोड़कर अपयश को उपलब्ध करने की जिनकी ललक होती हो। मूर्खता को समेटने, अपना अहित करने, भविष्य को अंधकारमय बनाने की छूट होते हुए भी अनर्थ को कोई बिरले ही वरण करते हैं। देखना यह है कि कहीं हम हित की उपेक्षा कर अनहित तो नहीं अपनाते।

युग परिवर्तन की अति महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि यह है कि भावनाशील मनुष्यों का अधिकांश समय पेट-प्रजनन की सीमित स्वार्थपरता में न खपेगा। उसका एक बड़ा अंश उस प्रगति के निमित्त लगेगा, जिसे आत्मिक आदर्शवादिता और भौतिक सुख-शांति के निमित्त बन पड़ने वाली सहकारिता कहा जा सकता है। इसे कठिन समझा भी जाता है, पर वस्तुतः वैसा है नहीं। निर्वाह के

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / ९**

निमित्त कुछ घंटे लगा देना पूर्णतः पर्याप्त हो सकता है। इसके बाद जो कुछ बचता है, उसे दैवी प्रयोजन के लिए लगाए जा सकने में क्यों किसी को कुछ अड़चन अनुभव होनी चाहिए। प्रतिभाओं ने अपना व्यक्तित्व पतन पराभव के लिए लगाया है। उसका प्रतिफल सामने है। जिधर भी आँख उठाकर देखा जाए, उधर ही दुष्प्रवृत्तियों का बोलवाला दीख पड़ता है। यदि प्रवाह उलट जाए और सदाशयता के निमित्त सज्जनों के प्रयास चल पड़ें, तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य का सोया हुआ देवत्व फिर से न उभर पड़े और अपने इसी संसार की गतिविधियाँ ऐसी बन पड़ें जिनके बीच रहते हुए स्वयं ऊँचा उठने और दूसरों को ऊँचा उठाने का प्रयास सर्वत्र सफल होता न दीख पड़े।

उलटे को उलट देने पर बात सीधी हो जाती है। जिनने अधःपतन के सरंजाम जुटाए हैं, वे ही यदि उत्थान, अभ्युदय और परमार्थ की गतिविधियों को अग्रगामी बनाने में जुट पड़ें तो अपनी इसी दुनियाँ में स्वर्गीय वातावरण का देखते-देखते सृजन हो सकता है। समय ईश्वर प्रदत्त ऐसी शक्ति है, जिसे जिस भी प्रयोजन के लिए लगाया जाए, वह उसी में सफलताओं के अंबार लगा सकती है। पिछले नवयुगों के अवसर पर इस तथ्य के अनेकों बार प्रयोग परीक्षण भी हो चुके हैं। इस बार फिर वैसा ही अवसर सामने आ रहा है। प्रतिभाएँ यदि सृजन में लगेंगी तो नवयुग के आने में देर न लगेगी। इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य के अवतरण की संभावना यों कठिन दीखती है, पर वस्तुतः वैसा कुछ है नहीं। तेजस्वी प्रतिभाएं यदि सृजन प्रयोजन में जुट पड़ें, उसके लिए अपना नियोजित समय देने लगे तो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में कुछ भी देर लगने वाली नहीं है।

धन मनुष्य का अपना कमाया हुआ है, उसे वह दुष्प्रयोजनों में से रोक ले, तो इतनी उलट-पुलट से मात्र समय के सहारे शुभ संयोग का सृजन हो सकता है। फिर यदि कदाचित् मुट्ठी में आए साधनों में से भी कुछ का नियोजन पुण्य प्रयोजनों में करना बन पड़े, तो कोई कारण नहीं कि सदाशयता की उन्नत परिस्थितियाँ न बन पड़ें और ऐसा कुछ चल पड़े, जिसके अवतरण से सर्वत्र सुख-

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १०**

शांति और प्रगति की मंगलमयी संभावनाओं का निर्झर बहने लगे।  
यही होने जा रहा है। यही होकर रहेगा।

## विनाश उलटेगा, सृजन पनपेगा

स्रष्टा का सर्वोपरि उपहार मनुष्य जीवन है। उसमें ऐसी विभूतियाँ, अगणित भांडागार भरे पड़े हैं, जिन्हें सर्वसाधारण द्वारा ऋद्धि-सिद्धि के नाम से जाना जाता है। जीवन शक्तिशाली है। उसकी विभूतियों की कोई नापतौल नहीं। प्रश्न मात्र सदुपयोग दुरुपयोग का है। जिनने जिस परिणाम में उनका सत्प्रयोग कर लिया उनके लिए समृद्धियों की, संपदाओं की कोई कमी नहीं; साथ ही यह तथ्य भी इसी संदर्भ में जुड़ा हुआ है कि दुरुपयोग करने पर यही जीवन दो ऐसे दुष्परिणाम भी उत्पन्न कर सकता है, जिन्हें असुरता, पैशाचिकता आदि नामों से जाना जाता है, जिनके कारण समूचा वातावरण विषाक्तता एवं नारकीय यंत्रणाओं से भर जाता है।

मनुष्य गलतियाँ करने में पूरा उत्साही है। आवेश में उसे कुमार्ग पर चलने और कुकर्म करने में भी देर नहीं लगती। इतने पर भी उस समझदारी का सर्वत्र अंत नहीं हो जाता जो दुष्परिणामों को देखकर पैर पीछे हटाने और गलती सुधारने में भी तत्परता बरतती है। पिछली दो शताब्दियों में उसके हाथों ज्ञान-विज्ञान की असाधारण उपलब्धियाँ हस्तगत हुई हैं। असाधारण सफलताएँ अनेक बार उन्माद जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती हैं। ऐसा ही कुछ पिछले दिनों भी हुआ। रस्सी के धोखे में कई बार बच्चे सर्प जैसे कालपाश को भी पकड़ लेते हैं। आकर्षक चमक देखकर कई बार जलती आग में भी हाथ डाल देते हैं। जिन विकल्पों का सदुपयोग करके सुख-शांति के असीम भांडागार हस्तगत किए जा सकते हैं, उन्हीं का दुरुपयोग कर लेने पर ऐसे परिणाम भी सामने आते हैं, जिनके लिए पश्चाताप करने, भर्त्सना का भाजन बनने और त्रास सहने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता है। इन दिनों ऐसा ही हुआ है। बढ़ी हुई बुद्धिमत्ता और उसके सहारे संग्रह हुई संपदा का दुर्भाग्यवश दुरुपयोग ही होते बन पड़ा है और उसकी ऐसी अवांछनीय प्रतिक्रियाएँ सामने आई हैं कि हम चारों ओर त्रास सहते और त्रास देते हुए देखते हैं।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /११**

जीवन के बदले कुछ भी खरीदा जा सकता है। उसका थोड़ा अंश भी जिस प्रयोजन के लिए लग जाता है उसी अनुपात में उसके परिणाम भी सामने आते हैं। भवितव्यता अब महाकाल के माध्यम से समझदारों को यह सिखाने आ रही है कि जीवन का, समय का जितना अधिक बन पड़े सदुपयोग ही करना चाहिए। इसी में अपने लिए और दूसरों के लिए लाभ है।

महाकाल ने इस परिवर्तित संभावना से हर बुद्धिमान को समझाया है कि जब शरीर निर्वाह के लिए आसानी से कुछ घंटे के श्रम से काम चल सकता है तो शेष बची विभूतियों को सत्प्रयोजनों में क्यों न लगाया जाए? समझदारों ने इस सत्प्रामर्श को स्वीकार भी कर लिया है। इसलिए नवयुग के आगमन के प्रथम चरण में जन साधारण की यह मान्यता बनने लगी है कि बचे हुए बहुमूल्य समय का एक बड़ा भाग सत्प्रयोजनों में क्यों न लगाया जाए? यह मान्यता क्रिया रूप में चल भी पड़ी है। परिवर्तन का तारतम्य-बिठाने वाले महाकाल ने ऐसा प्रचलन आरंभ किया है जिससे मानवी शक्ति का विश्वकर्मा के क्रिया-कौशल की तरह सृजन प्रयोजनों के निमित्त उपयोग होने लगे? इस प्रश्न का उत्तर भी रचनात्मक ही मिल रहा है। युग सृजेताओं की एक ऐसी बड़ी मंडली कार्यक्षेत्र में उतर रही है जैसी कि पिछले लंबे समय से पुरुषार्थरत होते कभी देखी नहीं गई।

महाकाल की इस योजना में प्राथमिकता यही दी गई है कि सृजन शिल्पियों की एक बड़ी टोली जिसमें न्यूनतम एक करोड़ सदस्य हों, कार्यक्षेत्र में उतरे और फैली हुई अवांछनीयता को झाड़-बुहार कर दूर करने के साथ-साथ वह सब भी उतने ही उत्साह के साथ करे जिसके आधार पर उज्ज्वल भविष्य का सर्वतोमुखी सृजन होने जा रहा है।

हमारे पिछले ८० वर्षों के प्रयत्न से पच्चीस लाख के करीब ऐसे व्यक्तियों का सृजन हुआ है जिन्हें बिना किसी असमंजस के देवमानवों की संज्ञा दी जा सके। यह फल अब पके चुके हैं और इस स्थिति में पहुँच चुके हैं कि अपने परिपक्व बीजों द्वारा नई पौध का सृजन कर सकें और यह अभिनव उत्पादन एक करोड़ से कम

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १२**

न रहे। इतना बड़ा उत्पादन ऐसे अभिनव उद्यान के रूप में दृष्टिगोचर होगा जिसे धरती पर नंदनवन की, चंदनवन की, कल्पवृक्ष परिकर की उपमा दी जा सके।

युग संधि के अगले कुछ वर्षों में एक करोड़ सृजन शिल्पी कार्यक्षेत्र में उतरने जा रहे हैं। भले ही वे समय की माँग को पूरा करने में समूचा समय न लगा रहे हों, पर शरीर की माँग के लिए बीस घंटे लगाते रहने के उपरांत चार घंटे तो नव सृजन के लिए लगाते ही रह सकेंगे। औसत दो घंटे की भी लगाई जाए तो दो करोड़ घंटे इतने में भी बन जाते हैं और करीब पाँच लाख पूरे समय काम करने वालों जितने बनते हैं। इतने शिल्पी जिस निर्माण में अनवरत रूप से संलग्न हों उसका स्तर और परिणाम इतना तो हो ही सकता है जिसके सहारे सत्प्रवृत्तियों के समुदाय को समूचे संसार में विस्तृत होते देखा जा सके।

इन दिनों संसार में प्रायः ६०० करोड़ से भी अधिक मनुष्य हैं। इनमें से बाल, वृद्ध, रोगी, अपंग, अविकसितों की आधी संख्या छोड़ दी जाए तो समर्थ व्यक्ति ३०० करोड़ ही रह जाते हैं। उनको सँभालने-सँवारने के लिए यदि पचास लाख व्यक्तियों का पूरा समय नियोजित हो सके तो उसे कम नहीं आंका जाना चाहिए। अस्पतालों में रोगियों की तुलना में डॉक्टर कम होते हैं। दो बैलों के कृषि श्रम से कितने परिवारों का उदर पोषण होता रहता है। प्रतिभा संपन्नों की नई पीढ़ी जो इन दिनों सक्रिय दिखाई दे रही है, उसे न्यून नहीं माना जाना चाहिए। प्रतिभाएँ विकास के क्षेत्र में जब संलग्न होती हैं तो उसमें आशाजनक सफलता प्रस्तुत कर दिखाती हैं।

रेल, वायुयान, जलयान, कारखाने आदि विशालकाय संयंत्रों को चलाने वाले कुछ ही ड्राइवरों से काम चल जाता है। पिछले दिनों दुनिया में बिगाड़ उपस्थित करने वाली जनसंख्या थोड़ी ही रही है। उनकी सीमित बुद्धि, सीमित कौशल और सीमित साधनों के सहारे ही इतना अनर्थ खड़ा हो गया है, जिसके कारण सर्वत्र शोकसंताप ही बिखरे पड़े हैं, फिर कोई कारण नहीं कि सृजन प्रयोजन में जुटने वाले समर्थ साधकों की शक्ति का सुनियोजन उत्साहवर्द्धक सत्परिणाम उत्पन्न न कर सके। एक गड़रिया भेड़ों

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १३**

के झुंड को किसी भी दिशा में हाँक ले जाता है। जिनमें नेतृत्व की क्षमता है वे अनौचित्य पर उतारू होने पर भयंकर अहित खड़े कर सकते हैं, तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि प्रतिभावानों की नई पीढ़ी अपने नए उत्साह और नए पराक्रम के सहारे नव-सृजन का प्रयोजन बढ़-चढ़कर पूरा न कर सके।

देव समुदाय की ऊपर की पंक्तियों में चरचा हुई है। इसके साथ ही सुदृढ़ देव संगठन भी चाहिए। उसके लिए एक सरल माध्यम चुना गया है—लाखों यज्ञों के आयोजनों की समारोह शृंखला। पुराने ढंग के आयोजनों में तो इसके लिए करोड़ों रुपए और हजारों श्रम साधकों को जुट ही जाना चाहिए, पर यज्ञों की अभिनव शृंखला तो सरलता और सस्तेपन की दृष्टि से इतनी सर्व सुलभ रखी गई है कि हर आयोजन के पीछे कम साधनों से ही काम चल जाता है। इतने अधिक श्रम शिल्पी जिस भी काम में जुटें उसे ग्वाल-वालों द्वारा गोवर्द्धन उठाए जाने और रीछ-वानरों द्वारा समुद्र में सेतु बनाए जाने जैसे नए उदाहरण देखते-देखते प्रस्तुत कर सकते हैं।

एक करोड़ भागीदारों और एक लाख संगठनों द्वारा नवयुग के नवसृजन का अभूतपूर्व प्रयोजन अपने समय पर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर ही सकता है। भले ही वह मोटी दृष्टि से कितना ही भारी, कितना ही कष्ट साध्य और कितना ही असंभव स्तर का क्यों न दीख पड़ता हो?

यह समूचा तंत्र कितने प्रकार के, कितने स्तर के, कितने महत्वपूर्ण कार्य कितने कम समय में संपन्न कर सकेगा? इसकी आज तो कल्पना ही की जा सकती है। पर कल यह भी दीख पड़ेगा कि जो असंभव दीख पड़ता था वह कितनी सरलतापूर्वक कितनी स्वल्प अवधि में संभव हो गया।

मनुष्य समुदाय के, प्राणी जगत के बहुउद्देशीय प्रयोजन इतने अधिक हैं जिनकी साधारणतया गणना नहीं हो सकती और जिन्हें संभव बनने में बुद्धि चकराती है। फिर भी उस महाशक्ति के लिए असंभव क्या हो सकता है? जिसने इतना विशालकाय ब्रह्मांड विनिर्मित कर दिखाया और उसके नियंत्रण में उस सब का सृजन,

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १४**

अभिवर्द्धन और परिवर्तन का क्रम निरंतर चलता रहा है। सूर्य, चाँद बनाने वाला क्या नहीं बना सकता है? समुद्र की गहराई और पर्वतों की ऊँचाई जिनकी गरिमा की नाप-तौल करने में सर्वथा असमर्थ है।

समझा जाना चाहिए कि युग परिवर्तन जैसी विशालकाय योजना किसी व्यक्ति विशेष की नहीं है। इसके पीछे महाकाल की वैसी समर्थ योजना काम करती है जिसे विश्वकर्मा की सृजन कुशलता से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर माना जा सकता है। उस अरुणोदय की प्रथम झाँकी प्रस्तुत संकल्प के रूप में अपनी प्रथम झलक झाँकी का दर्शन करा रही है, जिसका प्रभाव पूर्व के अरुणोदय से मिलता-जुलता समझा जा सकता है।

मनुष्य की प्रमुख समस्याओं में से प्रत्येक का कलेवर असाधारण विस्तृत है। राजनीति पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रतीत होगा कि यह मकड़ी का जाल कितना विस्तृत है। जिसमें अपने को लगभग सारे अंतरिक्षीय ताने-बाने के अंतर्गत जकड़-सा लिया है। फिर सामाजिक समस्याओं की बारी आती है। छोटे-छोटे समुदायों में भाषा, संप्रदाय, संस्कृति, प्रथा-प्रचलन आदि के नाम पर इतना बड़ा विभाजन है कि एक मनुष्य जाति को असंख्यों प्रकार में बाँटा कहा जा सकता है। मानसिक विचारणाएँ इतनी अधिक और इतनी चित्र-विचित्र हैं कि हर मनुष्य अपने आप में एक स्वतंत्र संसार समझा जा सकता है। बाहर से देखने में मानवी शरीर संरचना प्रायः एक जैसी मिलती-जुलती मालूम पड़ती है, पर उसके भीतर विद्यमान अणु-परमाणु, जीवाणु-विषाणु इतने अधिक आकार-प्रकार के हैं कि उन्हें एक-दूसरे से भिन्न प्रकार की संरचना कह सकते हैं। मान्यताएँ, भावनाएँ, आकांक्षा, अभिरुचियाँ, क्रिया-प्रतिक्रिया भी ऐसी विचित्र हैं कि एक दीखने वाला मनुष्य अपने आप में एक स्वतंत्र विश्व ब्रह्मांड समेटे हुए है।

पदार्थ जगत और भी अधिक विचित्र है। वनस्पतियों, रसायनों, धरातलों, समुद्रों, अंतरिक्ष की विभिन्नताओं को यदि गिना-समझा जाए तो मनुष्य को हतप्रभ होकर रहना पड़ता है। इस समूचे विस्तार

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १५**



का प्रत्येक कण अपनी असंख्य विशेषताओं से भरा-पूरा है। उनमें से प्रत्येक के साथ जुड़ी हुई अगणित भिन्नताओं और समस्याओं का कोई ठिकाना नहीं। इसमें से औचित्य और अनौचित्य का, उपयोगिता, अनुपयोगिता का इतना बड़ा ताना-बाना बुना हुआ है कि उस सबकी कल्पना तक कर सकना असंभव हो जाता है। इस सब को लगभग पूरी तरह उलटे से सीधा करना कल्पनातीत कार्य है। इसके लिए एक करोड़ मनुष्य और एक लाख संगठनों की जो योजना बनी है उसे नगण्य स्तर का ही कहा जा सकता है। फिर भी एक झलक-झाँकी तो मिलती ही है कि नियंता नई सृष्टि की कितनी नई विशेषताओं और विभूतियाँ को सँजोए हुए कितने बड़े परिवर्तनों का संरजाम जुटाए रहता है। वस्तुस्थिति को देखते हुए एक शब्द में इतना ही कहा जा सकता है कि मनुष्यों के एक छोटे से वर्ग ने महापरिवर्तन के क्षेत्र में अपने हिस्से का जो प्रयास कंधे पर लिया है वह नगण्य है। लगभग वैसा ही जैसा कि किसी हाथी जैसे विशालकाय प्राणी का परिचय दूनी आकृति का मिट्टी का खिलौना दिखाकर बच्चे को सामान्य ज्ञान से अवगत कराया जा रहा हो। क्योंकि व्यक्ति विशेष या संगठन विशेष का, प्रयत्न विशेष का नगण्य सा आभास पाकर हम मात्र इतना ही अनुमान लगा सकते हैं कि स्रष्टा को समय की समस्याओं को सुलझाने के लिए ऐसी चित्र-विचित्र सूझें सूझ रही हैं।

देश, काल, पात्र के अनुरूप कार्यों के विभाजन किए जाते हैं और दायित्व सौंपे जाते हैं। ऐसा ही कुछ इन दिनों भी हो रहा है। सर्वप्रथम प्रतिभाएँ उभारी जा रही हैं। उनके अंतराल में समय के अनुरूप उमंगों के ज्वार-भाटे उठाए जा रहे हैं। कुछ महत्वपूर्ण कर सकने जैसी क्षमताओं के अनुदान दिए जा रहे हैं और जो कुछ उनके द्वारा विलक्षण किया जा रहा है उसके नक्शे बनाए और मॉडल ढाले जा रहे हैं। इन्हीं दिनों इसी स्तर का ऐसा ही कुछ हो रहा है। हम सब इसी कौतुक-कौतूहल को आश्चर्य भरी नजर से देख रहे हैं। अपनी नहीं-सी समझ के अनुरूप कुछ को संभव, कुछ को असंभव, कुछ को विश्वस्त और कुछ को अविश्वस्त मान रहे हैं। यह अपनी-अपनी मर्जी है किंतु जो नियति का निर्धारण है

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /१६**

वह एक प्रकार से सुनिश्चित है कि अंधकार का समापन हो चला है, ऊषाकाल का अरुणोदय अपने अस्तित्व का परिचय दे रहा है। परिवर्तन को सुनिश्चित दिखा रहा है।

ध्वंस की अपनी शक्ति है। उसकी विनाश लीला से सभी परिचित हैं। चिनगारी किस प्रकार दावानल बनती है और विशाल वन क्षेत्र को किस प्रकार भस्मसात कर देती है, इसे सभी जानते हैं, किंतु साथ ही जानना यह भी चाहिए कि क्षमता सृजन की भी कम नहीं है। वर्षा में उगने वाली हरीतिमा का विस्तार सर्वत्र सहज देखा जा सकता है। बादलों की घटाएँ जब बरसती हैं तो जल-थल एक करके रख देती हैं। यह दृश्य भी अविज्ञात नहीं है। बासंती बहार से कौन परिचित नहीं है। उद्भिजों की सृष्टि में किस प्रकार अनगिनत विस्तार होते हैं। यह तथ्य भी अविज्ञात नहीं है।

ध्वंस के उपरांत बना हुआ सृजन ही हम अपनी आँखों के सामने विद्यमान देखते हैं उसकी बहुलता भी कम नहीं है। अब तक हम ध्वंस के विनाशकारी परिणामों का ही परिचय प्राप्त करते रहे हैं। अब समय आ गया है कि सृजन की पारी को देखें। मरघट की वीभत्सता सर्वविदित है। अब नर्सरी में उगते हुए कौतूहल को भी देखना चाहिए। प्रसूति गुह में नित्य कितने बच्चे जन्मते हैं, इस पर भी दृष्टि डाली जाए तो विदित होगा कि मृत्यु की तुलना में जीवन कहीं अधिक समर्थ है। ध्वंस की तुलना में सृजन की समर्थता अनेक गुनी बढ़ी-चढ़ी है। यदि ऐसा न होता तो सृष्टि में जो विस्तार, गौरव और सौंदर्य का माहौल बना हुआ है उसका पता भी न चलता।

सृजन की अपनी परंपरा है। वह जब कभी प्रकट होती है, तब कुछ हरा-भरा बनाकर रख देती है। बढ़ोत्तरी की क्षमता किसी प्रकार कमजोर नहीं रहने पाती। समर्थता ही प्रबल है। उसी ने ध्वंस को अनेक बार बर्दाश्त किया है, और उसी की समय-समय पर विजय दुंदुभी बजती रही है। अगले दिन ऐसा ही शुभ संदेश लेकर आ रहे हैं। इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य की—घाटे की पूर्ति की घोषणा कर रही है। असुरता की विजय पताका जिन दशों दिशाओं में फहरा रही थी, उन दिनों देवताओं से पलायन के

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १७**

अतिरिक्त और कुछ बन नहीं पड़ रहा था। लगता था कि सृष्टि का क्रम ही उलट जाएगा, पर वैसा हुआ नहीं। महाकाली अपने विशाल रूप में प्रकट हुई थी और जो हो रहा था, होने जा रहा था उस सब को अपने प्रबल पराक्रम से उलट कर रख दिया। इस बार भी विनाश के उलट जाने का ही उपक्रम बन रहा है। बन चुका है।

## विकास क्रम रुकेगा नहीं

चैतन्य शक्तियों में सबसे बढ़कर संघ शक्ति है। परमाणुओं का संयुक्त संचालन ही इस विशाल सृष्टि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। कोशिकाओं का एकत्रीकरण ही शरीर संरचना है। ग्रह-नक्षत्रों का घेरा ही ब्रह्मांड है। आत्माओं का समन्वय-समुच्चय ही परमात्मा के नाम से जाना जाता है और उसे सर्वशक्तिमान कहा जाता है। समन्वय ही सृजन के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

असुरों की संयुक्त शक्ति उनकी प्रबलता और असीम क्षमता के रूप में दृष्टिगोचर होती रही है। देवता इसीलिए बार-बार हारते रहे कि वे समन्वय की उपेक्षा करते रहे, अलग-अलग अपने शक्ति भंडार संचित करते रहे। सहयोग का चमत्कार उन्हें विदित ही न हो सका और न उसका समुचित प्रयोग ही कभी उन्होंने किया। इस पराजय के मूल कारण का जब भी उन्हें पता चला, तभी वे एकत्रित हुए और असाधारण स्तर की सफलता प्राप्त कर सके। समन्वय ही शक्तिपुंज है। जब उन्हें यह पता चला, तभी यह भी समझा कि असुरता से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी शक्तियाँ देवसत्ता में हैं। भूल से तो हीरे को भी काँच का टुकड़ा समझा जा सकता है। मजबूत रस्सा जब अपने छोटे पृथक तिनकों के रूप में बिखर जाता है, तो उसकी शक्ति का एक प्रकार से समापन ही हो जाता है। समुद्र मंथन से उपलब्ध हुए रत्न और कुछ नहीं केवल समन्वित शक्ति के प्रयोग के चमत्कारी परिणाम भर थे।

देव शक्ति के समन्वय का इस आड़े समय में फिर एक बार सशक्त प्रयोग हो रहा है। देव-सम्मेलन दिव्य समन्वय के रूप में इन दिनों यज्ञों का व्यापक विस्तार हो रहा है। विशालकाय और

## आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /१८

अति खर्चीले यज्ञों का समय अब नहीं रहा है। शुद्ध सामग्री भी उपलब्ध नहीं है, इसलिए प्रतीक पूजा के रूप में धूपबत्ती और घृत दीपकों का यजन ही गायत्री महामंत्र के साथ जोड़कर यजन प्रक्रिया पूरी की जा रही है। सुविस्तृत भारत भूमि में सुव्यवस्थापूर्वक बिना अधिक कठिनाई के एक करोड़ देव संगठन का उद्देश्य पूरे करने वाले दीपयज्ञ हो सकते हैं, किंतु सत्पात्रों को प्रमुखता देने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए शांतिकुंज से जुड़े हुए देव समुदाय के बलबूते एक लाख शक्ति संघों का ही शुभारंभ करने का निर्णय किया गया है। बड़ा वजन एक बारगी उठाने की अपेक्षा यह कहीं सरल है कि खंड-खंडों में थोड़ा-थोड़ा संजोने की नीति अपनाई जाए। निश्चय इसी प्रकार का हुआ है। पिछले दिनों शांतिकुंज परिवार के देव संघ ने मिल-जुलकर एक लाख संगठन खड़े करने, यज्ञों के आयोजन आरंभ करने का कदम उठाया है। यह क्रम भविष्य में भी निरंतर चलता रहेगा। इसी आधार पर छोटे-छोटे कदम उठाते हुए भी ऊँची और लंबी दीखने वाली मंजिल भी आसानी से पूरी की जा सकेगी।

इन दिनों धरती में प्रायः ६०० करोड़ से भी अधिक मनुष्य हैं। अवांछनीयता का दौर अभी समाप्त नहीं हुआ है। जनसंख्या की वृद्धि अगले दिनों भी बढ़ती रहेगी। उनमें से देवत्व के पक्षधर समुदाय को बीनना-बटोरना पड़ेगा। उनकी संघ शक्ति को विकसित करना भी अभीष्ट होगा। तब तक लाख के स्थान पर एक करोड़ यज्ञों के आयोजन बन पड़े, तो उसे भी आश्चर्य नहीं समझना चाहिए। विधान इतना संक्षिप्त और सरल है कि उन्हें मध्यम वर्ग के लोग भी निर्धारित अवधि के अंतर्गत सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

अब भागीदारी का महत्त्व समझ लिया गया है और हर क्षेत्र में उसी योजना का प्रयोग हो रहा है। आर्थिक क्षेत्र में सहकारी समितियाँ, बैंक, निजी कंपनियाँ मिलजुलकर छोटे-बड़े कार्य संपन्न कर रही हैं। सामाजिक क्षेत्र में पंचायतें, नगरपालिकाएँ, सेवा समितियाँ जैसे साधन खड़े हो रहे हैं। सैन्य दल सामूहिकता का ही एक स्वरूप है। धार्मिक क्षेत्र में अलग-अलग जप, तप,

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / १९**

पूजा, पाठ करने की अपेक्षा सामूहिक धर्म आयोजनों का प्रचलन चल पड़ा है। राजनीतिक पार्टियाँ भी गठित होती और चुनाव लड़ने जैसे बड़े काम करते देखी जाती हैं। विधान सभाएँ, लोक सभाएँ, राज्य सभाएँ जैसे आधार बड़े प्रयोजन की पूर्ति के लिए खड़े हो रहे हैं। विश्व राष्ट्र संघ का गठन इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए हुआ है। इनमें अधिकाधिक लोगों का सहयोग सम्मिलित किया जा रहा है। धार्मिक आयोजन इसी रीति-नीति को अपना रहे हैं।

नवयुग के अभिनव सृजन के लिए भी ऐसी प्रतिभाएँ खोजी जा रही हैं, जो कूप-मंडूक, गूलर के भुनगे न रहकर सामूहिक शक्ति का महत्त्व समझें और बड़े कामों के लिए बड़े संगठन खड़े करने की आवश्यकता को पूरी तरह अनुभव करें। यह प्रक्रिया अब संदिग्ध नहीं रह गई है। उसकी अनिवार्यता समझने और अपनाने के लिए सर्वत्र भाव भरे प्रयत्न हो रहे हैं। उन प्रयासों को सहायता भी मिल रही है।

विभिन्न भाषाओं में अखंड ज्योति पत्रिका के माध्यम से शांतिकुंज की प्रचंड प्रेरणा का अवगाहन करने वाले पंजीकृत सदस्य प्रायः दस लाख से अधिक हैं। अनुपाठक एक से पाँच बनाने की रीति-नीति अपनाकर प्रायः पचास लाख हो चुके हैं। एक से पाँच की बढ़ोतरी अब एक सुनिश्चित नीति बन गई है। नव सृजन की विस्तार प्रक्रिया के संबंध में भी इसी प्रकार दस लाख से पचास लाख और इसकी पाँच गुनी अभिवृद्धि के हिसाब से २५० लाख और फिर प्रायः छः करोड़ के लगभग। गणना न्यूनतम के अनुपात से करना, आशा अपेक्षा की कटौती करके आँकना ही ठीक रहता है। इस हिसाब से सोचा जा सकता है कि निर्धारित प्रचार-प्रक्रिया अगले वर्षों में प्रायः एक करोड़ को अपने अंचल में लपेट लेगी। वक्ताओं की तुलना में श्रोता अधिक होते हैं और श्रोताओं की तुलना में महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को चर्चा का विषय बना लेने पर वक्तृता अनेक गुनी बढ़ जाती है। इस प्रकार नवयुग के समर्थक परिचित सहयोगी खड़े करते हुए एक करोड़ की संख्या तक जा पहुँचें, तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /२०**

मक्का, बाजरा आदि के बीज बोने पर सहज ही एक से सौ हो जाते हैं। पशु-पक्षी तक अपने जीवन काल में दस के औसत तक बढ़ जाते हैं, तो मनुष्यों में भी अभिवृद्धि का क्रम प्रायः पाँच के हिसाब से चल रहा है। यह शरीर से शरीर प्रजनन की प्रक्रिया हुई। विचारों से विचार बढ़ाने का विस्तार क्रम और भी अधिक तीव्रता पकड़ता है। नशेबाजी, गुंडागर्दी, असभ्यता का जो क्रम पिछले दिनों बढ़ा है, उसे देखते हुए लगता है कि दुष्प्रवृत्तियों का अनुपात बढ़ने की प्रक्रिया भी अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। दुष्प्रवृत्ति के अनर्थकारी परिणाम सहज प्रकट हो जाते हैं, इसलिए उनका विस्तार सहज समझ में आ जाता है, पर यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि सत्प्रवृत्ति के विस्तार की गति अत्यंत मंद होती है। गणना की जा सके, तो सद्भाव भरे सृजन की प्रक्रिया इतनी धीमी नहीं है, जितनी कि समझी जाती है। विचारशीलता इन दिनों भी घट नहीं, बढ़ रही है, भले ही उसका उपयोग किसी भी प्रयोजन के लिए क्यों न हो रहा हो। शिक्षा और सभ्यता का अभिवर्द्धन यद्यपि अभीष्ट उपक्रम से नहीं हो रहा हो, तो भी यह नहीं समझना चाहिए कि उनका विस्तार रुक गया है। धर्म-संप्रदायों के अनुयायी घट नहीं, बढ़ रहे हैं। शिक्षितों का अनुपात भी बढ़ा है। आशा की जानी चाहिए कि अगले दिनों समझदारी भी बढ़ेगी। बेशक अनौचित्य को अपनाने वाले बढ़ रहे हैं, पर यह भूल करने की आवश्यकता नहीं कि औचित्य का समर्थन रुक जाएगा, घट जाएगा। बढ़ेगा वह भी। बढ़ भी रहा है। बढ़ेगा भी।

मक्खी, मच्छर जैसे अनुपयोगी जीव-जंतु बढ़ते हैं-यह ठीक है, पर यह भी गलत नहीं है कि अन्न का एक दाना बोने पर वह सहज सौ-गुना हो जाता है। यदि ऐसा न होता, तो दिन में कई बार लगने वाली भूख का समाधान वर्ष में एक-दो बार ही फलने वाली फसल के द्वारा कैसे हो जाता और जीवित प्राणियों में से कितने अधूरा आहार पाने के कारण संसार में से कब के विलुप्त हो गए होते।

दिति की संतानें देवता और अदिति का प्रजनन असुर के नाम से प्रख्यात होते-होते इस समूचे धरातल पर छा गया। फिर यह कैसे

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २१**

स्वीकार न किया जाए कि ऋतु के अनुकूल फल और फूल अपना विस्तार न करेंगे। अभिवृद्धि मात्र अवांछनीयता की ही होगी और वांछनीयता का विस्तार रुक जाएगा, ऐसी आशंका कदापि नहीं की जा सकती।

संतों, सुधारकों और शहीदों की परंपरा अभी समाप्त नहीं हुई है। परिस्थितियों के अनुरूप उनमें निष्क्रियता भले ही आती रही हो, पर सृष्टि का क्रम अभिवर्द्धन का है। यदि कुसमय के अनुरूप अवांछनीयता का विस्तार हो सकता है तो कोई कारण नहीं कि उत्कर्ष के मौसम में पाला ही पड़ जाएगा, दुर्भिक्ष ही विजयी होगा। निराशा का कारण हो सकता है, किंतु आशा और उत्साह भरी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने और विस्तार करने की संभावना से भी इंकार नहीं करना चाहिए। विस्तार अच्छाई का भी होता रहा है।

शांतिकुंज ने अगले दस वर्षों में सृजन प्रक्रिया में तेजी आने का अनुमान लगाया है। विकास का भी, अभ्युदय का भी और प्रगति की संभावनाओं का भी। आरंभ में एक लाख देव संगठन खड़े होने, एक-एक करोड़ समर्थक सहयोगी विनिर्मित-गठित होने की आशा की है और अनुमान लगाया है कि वह विस्तार घटेगा नहीं, बढ़ता ही रहेगा। जो सोचा गया है, जो निर्धारित किया गया है, उसे अत्युक्ति नहीं माना जाना चाहिए। यज्ञ देव संगठनों के रूप में विकसित होंगे और एक करोड़ समर्थक भागीदार विनिर्मित होकर रहेंगे। यदि युगसंधि के कुछ वर्षों में यह हो सकता है तो कोई कारण नहीं कि इससे आगे की बेला और भी बढ़े-चढ़े उत्साहवर्द्धक परिणाम उत्पन्न न करे।

अवांछनीयता अपने क्रम से अभिवर्द्धन की दिशा में चली है। विश्वास यह भी किया जाना चाहिए कि श्रेष्ठता का अभिवर्द्धन रुकेगा नहीं। श्रेष्ठता विस्तार पकड़ेगी और उसका प्रतिफल उज्ज्वल भविष्य के रूप में फलित होता दृष्टिगोचर होगा। छूत की बीमारियाँ असंख्यों के लिए मरण एवं विनाश का संदेश साथ लेकर आती हैं, अभ्युदय का मौसम उपयोगी गतिशीलता पकड़ेगा, मान्यता इसकी भी निरंतर बढ़नी चाहिए।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /२२**

## आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम में गए-गुजरे ही बढ़ते हैं और उन्हीं का विस्तार होते देखा जाता है, किंतु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते हैं। वह लक्षण है—प्रतिभाओं का अभिवर्द्धन और उनकी भावनाओं में, गतिविधियों में उत्कर्षवादी तत्त्वों का अभिवर्द्धन।

अन्य जीव-जंतुओं की भाँति मनुष्यों में भी अनगढ़ों की, गए-गुजरों की संख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनों अशुभ संभावनाओं का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे हैं। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियों में विपन्नता बढ़ने के रूप में देखी जाती है, किंतु जब अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे संभावनाएँ निकट आ गईं जो अनौचित्य को गिरातीं और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती हैं।'

पिछले दिनों जब भी सराहनीय क्रांतियाँ हुई हैं, तब अनुकूलता आकाश से नहीं बरसीं वरन मात्र इतना हुआ है कि औचित्य की पक्षधर प्रतिभाएँ बढ़ीं, सुविस्तृत हुईं और कार्यरत दृष्टिगोचर हुई हैं। मनुष्य की सामर्थ्य असीम है। जब वह प्रकट होती है तो प्रतिभा कही जाती है। यदि वह उच्चस्तर की हो तो समझना चाहिए कि उनका समुदाय छोटा अथवा स्वल्प साधन वाला होते हुए भी अपने मनोबल के आधार पर महत्त्वपूर्ण अनुकूलताएँ उपार्जित कर लेता है। साथियों की भी कमी नहीं रहती, अनुयायियों का अभाव भी नहीं देखा जाता, सबसे बड़ी बात यह है कि उनके अंतराल में ऐसे तूफान उठते हैं, जो उच्चस्तरीय वातावरण बनाए बिना रह सकते ही नहीं। व्यक्तिगत वरिष्ठता के चरितार्थ होने पर ऐसा भी होते देखा गया है कि उस उत्साह में असंख्यों भाव-तरंगित होने लगते हैं। यह समुदाय ही उन महाक्रांतियों की भूमिका बनाता है, जिसे ऐतिहासिक माना और सराहनीय कहा जाता है। कुछ के अंतराल में उठी आदर्श की उमंगें अन्यान्यों को भी अपने रंग में रंग लेती हैं और देखते-देखते उस दिशा निर्धारण पर चल पड़ने वाले असंख्यों मनस्वी ऐसे

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /२३**



कार्य कर गुजरते हैं, जिनके अनुकरण करने वाले आश्चर्यजनक संख्या में दीख पड़ते हैं। अनुकूलता भी अपने अनुरूप अनेकों साधकों को एकत्रित कर लेती है।

जिन परिस्थितियों में कोई बड़ा काम बन पड़ने की संभावना नहीं होती, उनमें अनौचित्य को घटाने या मिटाने की संभावना इसलिए नहीं दीखती कि प्रतिकूलताओं का पलड़ा बहुत अधिक भारी दीखता है और टकराने पर जीतने के लक्षण भी बहुत कम दीख पड़ते हैं, हार की संभावनाओं को देखते हुए उत्साह भी ठंडा पड़ जाता है। किंतु होता कुछ ऐसा विलक्षण एवं विपरीत है, जिसमें आशा और अपेक्षाओं का अनुकूल प्रवाह बहने लगता है और अप्रत्याशित सफलताओं के आधार न जाने कहाँ से और कैसे बन जाते हैं। क्रांतियाँ प्रायः अप्रत्याशित ही हुई हैं। उनके लिए न जाने कहाँ से उत्साह उभरा-उफना कि सहयोगियों का दल दौड़ता चला आया और वे परिस्थितियाँ बन गईं जिनकी साधारण बुद्धि से कोई आशा या संभावना नहीं दीख पड़ती थी। हलके प्रतीत होने वाले व्यक्ति भारी पड़ते हैं और इतने बड़े काम कर दिखाते हैं, जिनकी पूर्व कल्पना कदाचित ही किसी में रही हो। असाधारण शक्ति आदर्शों को अपनाने से उभरती है। प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में बदल देने वाले अवसर यों तो कभी-कभी सामान्य मनस्वियों को भी मिल जाते हैं, पर सर्वांगपूर्ण सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्हीं में उभरती है, जिनमें आदर्शों के लिए पराक्रम कर गुजरने के उल्लास की उमंगें अपने अंतर में ज्वार-भाटों की तरह उठती-उमगती दीखती हों।

व्यवसाय बुद्धि सदा हानि-लाभ का हिसाब लगाती है और वही करती है, जिसमें अनुकूलता दृष्टिगोचर होती है। सफलता की संभावना के अवसर असंदिग्ध रूप से नजर आते हैं, किंतु आदर्शवादी पराक्रमों में तो तात्कालिक घाटा ही दीख पड़ता है। व्यवसाय बुद्धि ऐसे जोखिम भरे कदम उठाने से रोकती है। मात्र आदर्शों से प्रेरित साहस ऐसे समर्थन करता है, जिसमें आदर्शों की रक्षा में घाटा स्पष्ट दीखता है किंतु अंतःकरण वैसा कर गुजरने के बिना रुकता ही नहीं। बलिदानियों की परंपरा मात्र उन्हीं के गले उतरती है, जिनके

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २४**

अंतःकरण में दैवी प्रयोजनों के लिए अपना सब कुछ निछावर कर देने हेतु संकट उठाने के साथ-साथ उत्साह भरी उमंगें ही हिलोरें लेती हैं और घाटे में नफा और नफे में घाटा देखती हैं। यह दैवी प्रेरणा है। वह अपने साथ अकूत शक्ति लेकर कार्यक्षेत्र में उतरती है और न जाने कहाँ-कहाँ से संबंधी-सहयोगियों की प्राणवान मंडली बुलाकर साथ चलने के लिए विवश कर देती है। ऐसे प्रसंगों में देखा गया है कि संख्या में कम और क्षमता की दृष्टि से साधारण दीखने वाले लोग भी साहस की दृष्टि से अतिशय बलिष्ठ सिद्ध होते हैं। यों आरंभ में ऐसे लोगों के बारे में सामान्यतया यह धारणा नहीं बनती कि वे इतने बड़े शौर्य-बलिदान कर गुजरने के लिए उच्चस्तरीय साहस दिखा सकेंगे।

शरीर-बल, साधन-बल, संगठन बल आदि कितने ही लोगों में होते हैं, पर वे उनका उपयोग भी साधारणतया हेय स्तर के कार्यों में ही कर पाते हैं। त्याग-बलिदान में एक प्रकार घाटे की, जोखिम की स्थिति दीखती है, साथ ही वहाँ यह भी प्रतीत होता है कि घाटे के साथ ही असफलता भी मिल सकती है। इतने पर भी यदि आत्मबल उच्चस्तरीय साहस उभार दे, तो यही समझना चाहिए कि आत्मबल के रूप में दैवी प्रेरणा कुछ अद्भुत कर गुजरने की प्रेरणा भर रही है। नवयुग के अवतरण पर व्यक्ति में ऐसी ही प्रेरणाओं का बाहुल्य उभरता है और असंभव को संभव बना देता है।

महान परिवर्तन इसी प्रक्रिया द्वारा संपन्न होते रहे हैं व आगे भी महाकाल साधारण मनुष्यों को ही माध्यम बनाकर उनमें नवीन चेतना फूँककर उन्हें जीवंत प्राणवान के रूप में उभार कर उनसे असंभव प्रतीत होने वाले कार्य संपन्न कर दिखाएगा। मानव में निहित यह संभावना ही युग परिवर्तन का आधार है।

## अनायास ही मिलने वाला श्रेय

आग का सामान्य स्वभाव गर्मी और रोशनी है। जो वस्तु उसके जितनी निकट आती है, वह उसे प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुसार जलाती है। जब तक जितना ईंधन जिस स्तर का रहता है, वह प्रज्वलन भी उसी स्तर का होता है। वह बुझ जाए तो ईंधन के रहते

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २५**

हुए भी जलने का क्रम बंद हो जाता है। इसी प्रकार ईंधन कितना ही क्यों न हो, यदि आग जल न रही हो, तो फिर सब कुछ जहाँ का तहाँ पड़ा रहेगा। जलन जैसा कोई उपक्रम दीख न पड़ेगा।

आग और ईंधन के मिलन से प्रज्ज्वलन होता है—यह तथ्य यथावत रहते हुए भी उस सम्मिलन की प्रतिक्रिया में यही अंतर रहता है। गीली वनस्पति जलाई जाए, तो उसमें से धुँधला धुआँ भर निकलेगा और जलता-बुझता रहेगा। इसके विपरीत सूखा ईंधन यदि भीतर तक हवा पहुँचने की स्थिति का हो तो तेज आग लगेगी, जल्दी फैलेगी और ज्वलन वेगवान होगा। इन भिन्नताओं के कारण आग और ईंधन के मिलने पर लपट उठने के सिद्धांत में बहुत कुछ अंतर देखा और पाया जाएगा।

पेट्रोल या गैस हवा के साथ मिलकर एक चिनगारी भर से भक जल जाते हैं और देखते-देखते बड़े क्षेत्र को अपने प्रभाव परिकर में लपेट लेते हैं। बारूद में मिले रसायनों के अपने गुण हैं। आतिशबाजी जलने पर अपने-अपने चित्र-विचित्र रंगरूप दिखाती और अपने ढंग के मनोरंजक स्वरूप प्रस्तुत करती है। आग्नेयास्त्रों के साथ संपर्क बनने पर उसकी प्रतिक्रियाएँ अलग-अलग तरह की होती हैं। बंदूक के और तोप के कारतूसों की शक्ति अलग-अलग तरह की आँकी गई है। 'डायनामाइट' के कारतूस पहाड़ को, चट्टानों को उछालते हैं, मजबूत किले के धुरे बखेर देते हैं। मुर्दा जलाते समय वही आग अपनी परिधि को विषैले धुँए से भर देती है। इसके विपरीत यदि चंदन या कपूर के चूर्ण को जलाया जाए तो उसकी मनभावन सुगंध आती है। पुआल में लगने पर वह तेजी पकड़ जाती है और दूर-दूर तक देखते-देखते फैल जाती है, इसके विपरीत गीला और मटमैला ईंधन ज्यों-त्यों करके, थोड़ा-थोड़ा करके जलता और धुँआ बखेरता रहता है।

आग के अपने गुण हैं, ईंधन के अपने। मोटी प्रक्रिया मिलने पर जलने की ही होती है, पर पदार्थों पर परिस्थितियों के अनुरूप उस ज्वलनशीलता में असाधारण स्तर का अंतर पाया जाता है।

मनुष्य के शरीर में एक तरह की और चेतना में दूसरी तरह की शक्ति रहती है। शरीर जीवनी शक्ति को धारण किए रहता

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २६**

है, जिसके सहारे अनेकों अंग-अवयव और कल-पुर्जे चलते और अपना काम करते हैं। गर्मी उसी के सहारे बनी रहती है और काम करने की क्षमता का उद्भव भी उसी से होता है। बलिष्ठता उसी पर निर्भर है। रोगों से लड़ने की शक्ति भी उसी में रहती है। इसमें कमी पड़ने पर अनेक प्रकार की दुर्बलता और रुग्णता आ घेरती है।

चेतना क्षेत्र की शक्ति हिम्मत, साहस की जन्मदात्री है। ओजस, तेजस और वर्चस उसी की देन है। यदि वह न रहे, तो जीवित रहना भी कठिन और असंभव हो जाए। बौद्धिक प्रखरता भी इसी के बल पर मिलती है। मनोबल, आत्मबल चेतना की ही प्रखरता के गुण हैं। दोनों उपरोक्त शक्तियाँ यदि अक्षुण्ण रहें, तो मनुष्य जीवित या सशक्त रह पाता है।

यह शारीरिक और मानसिक प्रयोग है, आध्यात्मिक शक्ति इससे आगे एवं ऊपर है। उसका संबंध न केवल शरीर एवं मस्तिष्क से है, वरन अदृश्य जगत में संव्याप्त दैवी सत्ता के साथ भी अपना संबद्ध जोड़ती है। देवी-देवताओं के नाम से भी उसी विशेषता की धारा-उपधाराओं को संबद्ध समझा जाता है। परब्रह्म यही है। ईश्वर, भगवान, स्रष्टा आदि भी इसी के नाम हैं। विश्व ब्रह्मांड में समर्पित होने के कारण इसी को विश्व चेतना भी कहते हैं, यह थोड़ी मात्रा में तो सभी में होती है, पर इसकी विशेष मात्रा योगी, तपस्वी अपनी विशेष साधना के बलबूते अर्जित करते हैं। उसी के अनुपात से कोई देवमानव, देवात्मा, महामानव, सिद्ध पुरुष आदि बन सकता है। जिस प्रकार पतंग के पतले धागे में भी कभी-कभी कारणवश विद्युत प्रवाह आ जाता है या प्रयत्नपूर्वक आकर्षित-अर्जित कर लिया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों में दैवी शक्तियों का संवर्द्धन भी हो जाता है। यह बड़ी मात्रा में होता है, तो उस व्यक्तित्व को असाधारण भूमिका में देखा-पाया जाता है। दिव्य व्यक्तित्व इसी के ही सहारे उपलब्ध और विकसित होते हैं। किंतु अतिरिक्त प्रयत्न करने पर दोनों के बीच घनिष्ठता भी उत्पन्न हो जाती है और परस्पर का आश्चर्यजनक आदान-प्रदान भी आरंभ हो जाता है।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /२७**

ब्रह्मांड में अगणित शक्तियों के भंडार भरे पड़े हैं। उनमें से जितने अपने लिए पृथ्वी आवश्यक समझती हैं, उतने ध्रुव केंद्र के माध्यम से खींचती और धारण करती रहती है। जो अनावश्यक है, उसे बहिष्कृत करती जाती है। इस प्रकार जिस मनुष्य ने अपने सूक्ष्म अंतःकरण को जितना परिष्कृत बना लिया है, वह उतना ही देवी अंश अदृश्य जगत से अपने लिए आकर्षित कर लेता है। उसमें उतने ही बड़े-चढ़े दैवी अंश पाए जाते हैं। उच्चस्तरीय शक्ति स्रोत यही है। इसकी तुलना में शारीरिक जीवन शक्ति और मानसिक विलक्षणता नगण्य है। उसमें उतना ही अंश पाया जाता है, जितना कि अंतराल में धारण कर सकने की विशिष्ट क्षमता होती है। इसे प्रयत्नपूर्वक अर्जित करना पड़ता है। साधना इसी प्रयत्नशीलता को कहते हैं।

उच्चकोटि के साधकों में जो कतिपय दिव्य शक्तियाँ पाई जाती हैं, वह उनके अपने साधना प्रयत्नों द्वारा अर्जित की हुई होती हैं। तपस्वी इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं। योनियों का पुरुषार्थ इसी उपार्जन-अर्जन के लिए होता है। ऋषि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि इसी स्तर की क्षमता अपने भीतर अत्यंत कष्ट साध्य प्रयत्नों द्वारा अर्जित करते हैं। जो जितनी, जिस स्तर की सफलता प्राप्त कर लेता है, वह उतने ही बड़े-चढ़े स्तर का सिद्ध पुरुष बन जाता है।

मनुष्य कलेवर में सीमित मात्रा में विशेष शक्ति धारण की क्षमता है। शरीर की धारणा एक सीमा तक है। खेलों में कीर्तिमान स्थापित करने वाले इसी का परिचय देते हैं। पहलवानों, बलवानों, योद्धाओं, बलिष्ठों में इसी का बाहुल्य देखा जाता है। मानसिक बल की भी एक सीमा है। बुद्धिमान, मेधावान, विशेषज्ञ, विद्वान, मनीषी इसी धन के धनी होते हैं। कभी-कभी उनमें अतींद्रिय क्षमताएँ भी पाई जाती हैं। आधुनिक परामनोविज्ञान के अंतर्गत दूरदर्शन, दूरश्रवण, भविष्य दर्शन, प्राण-प्रत्यावर्तन जैसी विशेषताएँ इसी आधार पर अर्जित करते देखी गई हैं। मानवी विद्युत के कई प्रकार के चमत्कार कितने ही लोगों में देखे गए हैं। यह भी इसी क्षमता का परिचय है।

ऊपर आँख उठाकर देखने से नीला पोला आकाश दीख पड़ता है। इसकी परिधि कितनी बड़ी है, यह साधारण आँखों से या

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २८**

मोटी बुद्धि से नहीं समझा जा सकता है। फिर भी वह इतना विस्तृत है कि उसे अकथनीय ही कह सकते हैं। साधारण समझ के अनुसार यह खाली दिखाई पड़ता है। जहाँ-तहाँ चाँद-तारे, गैस, ग्रह पिंड चमकते दिखाई पड़ते हैं। दीखने में पोला या खाली दीखने वाला यह आकाश भी सर्वथा शून्य नहीं है, इसमें एक से एक बढ़कर चमत्कारी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यद्यपि वे खुली आँखों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ती। एक्स-रे, अल्ट्रावायलेट, अल्फा किरणें, लेसर, रेडियो, ईथर आदि का बड़ा शक्तिशाली भंडार इस पोले आकाश में भरा पड़ा है। यदि उसे नापा-तौला जा सके, तो उसका भार माप उससे भी कहीं अधिक बैठेगा जितना कि इस अपनी दृश्यमान पृथ्वी का देखा जा सकता है।

जो वस्तुएँ खुली आँखों से नहीं देखी जा सकतीं, उसे सामान्य बातचीत में सूक्ष्म कहते हैं। दृश्यमान पदार्थों में एक बहुत थोड़ा अंश ही आँखों से दीख पड़ता है। शेष ऐसे हैं, जिन्हें अत्यंत सूक्ष्मदर्शी यंत्रों से ही किसी मात्रा में देखा-समझा जा सकता है। यह अदृश्य प्रतीत होते हुए भी स्थूल जगत की परिधि में आते हैं। पदार्थ इस संसार में जितना दृश्य है, उससे करोड़ों-अरबों गुना अदृश्य है। इतने पर भी उसे हम कदाचित ही किसी सीमा तक देख-समझ पाते हैं।

सूक्ष्म पदार्थ जगत की तरह चेतना जगत का भी उससे भी विशाल सूक्ष्म जगत है—सचेतन। इस समस्त विश्व ब्रह्मांड में अदृश्य चेतना भी भरी पड़ी है। इसे सचेतन स्तर का सूक्ष्म जगत कहते हैं। यही विराट ब्रह्म है। इसकी विशेषताएँ और भिन्नताएँ इतनी हैं कि उनकी आंशिक कल्पना कर सकना भी कठिन है। परब्रह्म या विराट ब्रह्म यही है। इसी विशाल ब्रह्म के अंतर्गत मनुष्य की प्राण-चेतना का भी एक बहुत छोटा अंश रहता है। जिस प्रकार विशाल समुद्र में छोटे-छोटे असंख्य जल-जंतु रहते हैं, ठीक उसी प्रकार विराट ब्रह्म के अंतर्गत भी मनुष्य में विद्यमान चेतना भी अणु-परमाणुओं के रूप में किसी प्रकार अपनी सत्ता बनाए हुए है। आमतौर से उसमें से उतना ही छोटा अंश लोगों के परिचय में आता है, जो शरीर अथवा मस्तिष्क की हलचलों के निमित्त काम

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / २९**

आता है, इस सबसे भीतर अंतःकरण या कारण सत्ता है। इसे जीवसत्ता या आत्मसत्ता भी कहते हैं। यों पृथक-पृथक लोगों में आत्मा के परमाणु अलग-अलग स्तर के हैं। इतने पर भी वे एक ही विराट ब्रह्म के छोटे-छोटे घटक हैं। साथ ही परस्पर इतनी सघनतापूर्वक जुड़े हुए भी हैं कि एक-दूसरे को असाधारण रूप से प्रभावित करते हैं। एक-दूसरे को आवश्यक एवं अभीष्ट मात्रा में क्षमता का आदान-प्रदान भी करते हैं। जिस विशिष्ट क्षेत्र में यह हलचलें चलती हैं, उसे अदृश्य अथवा सूक्ष्म जगत कहते हैं। इसमें अनेकों अदृश्य स्तर के जीवधारी भी रहते हैं, जिन्हें भूत-प्रेत, देव-दानव आदि नामों से जाना जाता है। जिस प्रकार दृश्य जगत के प्राणी परस्पर सहयोग या विद्वेष करते हैं, उसी प्रकार जगत के सचेतन घटक भी परस्पर चित्र-विचित्र स्तर का संबंध बनाए रहते हैं। इस सचेतन सत्ता का जिसमें जितना अधिक अंश किसी प्रकार बढ़ जाता है, वह महामानव, दिव्यमानव बन जाता है। यदि यह शक्ति सात्विक स्तर की हो, तो उसे देवमानव कहा जाएगा और यदि वह असुरता प्रधान है तो फिर उसे दैत्य और दानव स्तर का ही कहा जाएगा। दोनों में ही साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अतिरिक्त स्तर की असाधारण शक्ति पाई जाती है। इसीलिए उनका कर्तृत्व भी जनसाधारण की तुलना में कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और विशिष्ट, अद्भुत एवं चमत्कारी भी होता है।

मनुष्य विशेष की तरह परब्रह्म सत्ता की भी समय-समय पर अपनी इच्छाएँ और योजनाएँ उभरती हैं। सृष्टि का संतुलन बनाए रहना उसका प्रधान उद्देश्य होता है। इस प्रयोजन के लिए वह कई प्रकार के निर्माण, अभिवर्द्धन एवं परिवर्तन भी करती रहती है, पर उस कर्तृत्व की प्रक्रिया विलक्षण होती है। उसके अंग-अवयव भी नहीं होते। इसके बिना कोई दृश्यमान क्रिया-प्रक्रिया बन कैसे पड़े। इसीलिए सूक्ष्म जगत के विशिष्ट कार्य भी जब दृश्यमान स्तर पर संपन्न करने होते हैं, तो उसके लिए परब्रह्म को भी मनुष्य शरीर का आश्रय लेना पड़ता है। इस विशाल विश्व में मात्र मनुष्य शरीर ही एक ऐसा है, जो दैवी चेतना के अनुरूप कोई क्रिया-प्रक्रिया कर सकने में समर्थ है। अन्य प्राणियों की शरीर-संरचना और बुद्धि-

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / ३०**

चेतना ऐसी नहीं है, जो उच्चस्तरीय प्रयोजनों को संपन्न करने में काम आ सके। अन्य प्राणी तो अपना शरीर-पोषण, वंश-वृद्धि, आक्रमण-प्रत्याक्रमण जैसे छोटे-छोटे कार्य ही संपन्न कर सकते हैं। इसी छोटी परिधि में वे जीवित रहते और मरते हैं। मात्र मनुष्य शरीर ही एक ऐसा है, जो स्थूल और सूक्ष्म जगत का संचालन करने वाली परब्रह्म सत्ता की किसी इच्छा या अपेक्षा में योगदान दे सके, उसकी इच्छानुसार कुछ निर्माण या परिवर्तन कर सकने में समर्थ हो सके।

इस स्तर के मनुष्यों को देवात्मा कहते हैं। उनमें मानवी संरचना का समावेश तो होता ही है। इसके अतिरिक्त परब्रह्म की आशा एवं योजना के अनुरूप आवश्यक प्रयोजन पूरे करने में भी समर्थ होते हैं। ऐसी विशेष क्षमता संपन्न मनुष्यों में से जो उच्चस्तरीय समन्वित सृजनात्मक प्रयोजन पूरे कर सकने में समर्थ होते हैं, उन्हें देवमानव कहते हैं। देवात्मा, दिव्य मानव अथवा सिद्ध पुरुष जैसे नामों से उन्हें ही जाना जाता है। ईश्वरीय इच्छाओं की पूर्ति के लिए उन्हीं के शरीर एवं मानस का प्रयोग होता रहता है। ऐसे ही लोगों को अवतार, देवदूत आदि नामों से संबोधित किया जाता है। ऐसी विशिष्ट आत्माएँ मनुष्य शरीर में ही अवतरित होती हैं। अवतारों की शृंखला में विकसित विश्व में यह कार्य मनुष्यों द्वारा ही संपन्न होता है। जब तक मानव की सृष्टि नहीं हुई थी, तब तक यह कार्य मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह आदि योनियों द्वारा भी पूरा होता रहा है, पर जब विकास क्रम में मनुष्य स्तर की पूर्णता प्राप्त हो गई, तो फिर परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि जैसे अवतारी पुरुषों द्वारा ही भगवान अपने सामयिक अभीष्ट प्रयोजन ऐसे ही शरीर से पूरे करते रहे हैं।

ऋषि स्तर की आत्माएँ भी यही प्रयोजन पूरा करती हैं। जिन दिनों पृथ्वी पर सतयुग का वातावरण था, उन दिनों सृष्टि संतुलन की अनेकानेक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया ऋषि स्तर के समर्थ व्यक्तित्वों द्वारा संपन्न होती रही हैं।

इन दिनों असामान्य समय है। असंतुलन का बोलवाला है। मनुष्य का चिंतन, चरित्र और व्यवहार ऐसा कुछ विचित्र बन पड़ा

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३१**



है, जिसे मानवी गरिमा और मर्यादा के प्रतिकूल ही कहा जा सकता है। सभी जानते हैं कि दुष्प्रोजनों के भटकाव में विभ्रान्त हो जाने पर जो कुछ करते बन पड़ता है, वह समस्त संसार के लिए-अनुपम और अनिष्टकारी होता है। सीधे रास्ते राजमार्ग पर चलने वाले ही यात्रा सफलता और सरलतापूर्वक संपन्न करते हैं, किंतु जो कटीली झाड़ियों में भटक जाते हैं, उन्हें अनेक प्रकार के त्रास सहने पड़ते हैं। ऐसे ही समय को दैत्य युग कहते हैं। जब असुरता बढ़ती है, तो हर किसी के लिए विपन्नता खड़ी हो जाती है, समस्याएँ उपजती, गुत्थियाँ उलझती, कठिनाइयाँ खड़ी होती और विपन्नताओं की घटाएँ चढ़ दौड़ती हैं। इन दिनों जिधर भी दृष्टि पसार कर देखा जाए, उधर ही प्रतीत होता है कि अव्यवस्था और अस्त-व्यस्तता ही उपजती और बढ़ती देखी जाती है। वैयक्तिक और सामूहिक जीवन अशांत और अस्त-व्यस्तता से ही घिरता जा रहा है और प्रतीत होता है कि हम सब अशुभ एवं अप्रिय की ओर चल रहे हैं। अनर्थ आमंत्रित कर रहे हैं। कई बार तो ऐसा लगने लगता है कि हम सब कहीं सामूहिक आत्महत्या की ओर तो नहीं बढ़ रहे हैं, महाप्रलय जैसी परिस्थितियों को आमंत्रित तो नहीं कर रहे हैं। प्रदूषण, संघर्ष, विद्वेष, अभाव, दरिद्रता जैसे पिछड़ेपन की परिस्थितियाँ तो दौड़ती नहीं चली आ रही हैं।

संसार में ऐसी विपन्नताएँ अनेक बार आती रही हैं और लगता है कि वही महाविनाश तो कहीं निकट नहीं आ रहा है। ऐसी परिस्थितियों में सामान्य मनुष्य आवश्यक सुधार कर सकने में समर्थ नहीं हो पाते। स्वप्ना का ऐसे ही अवसरों के लिए उवाच है कि “जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की अभिवृद्धि होती है, तब-तब वे अपना प्रतिनिधि भेजकर असंतुलन को संतुलन में बदलते हैं।”

पतनोन्मुख प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य दुष्कर्म तो अपनी इच्छापूर्वक कर लेता है। सब ओर छाए हुए कुसंस्कार अपने स्तर की शिक्षा हर किसी को देते रहते हैं। अतएव दुष्प्रवृत्तियों की ओर रुझान सहज ही होता है। कुकर्म भी बिना किसी प्रयत्न के अपने आप ही बन पड़ते हैं। गिरने-गिराने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। यह सब स्वाभाविक रूप से चलता

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३२**

रहता है। परिश्रम ऊँचा उठने और उठाने में करना पड़ता है। अपने से नहीं बन पड़ता तो दूसरों से सहायता लेनी पड़ती है। विशेषतया जब कभी उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने और वैसा कुछ करने के लिए सौभाग्य से ही बन पड़ता है। उसमें दैवी सहायता का योगदान सम्मिलित होना एक प्रकार से आवश्यक या अनिवार्य बन जाता है। नेकी और भलाई अपनाने या दूसरों को सही दिशा में अग्रसर करने के लिए दिव्य चेतना की-परमात्म सत्ता की इच्छा, प्रेरणा और सहायता की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। जिनके कंधों पर उच्चस्तरीय दायित्व है और बिना व्यवधान के निभ भी जाते हैं, उन्हें सौभाग्यशाली दिव्य चेतना के कृपा पात्र ही समझना चाहिए। ऐसे कहीं कोई विरले ही मिलते हैं, जिन्हें इसके लिए चयन किया जाए, उन्हें विशेष रूप से दैवी अनुकंपा का पात्र समझना चाहिए।

अगले दिन ऊँचे उठने और उठाने के हैं। उसमें जिनकी भूमिका हो सकती हैं, उन्हें देवदूत की गणना में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यों ऐसे होते तो कम हैं, पर उसमें उनके निजी विवेक के अतिरिक्त ईश्वरीय अनुग्रह भी सम्मिलित होता है। इस समन्वय से उनकी शक्ति का पारावार नहीं रहता। इतनी शक्ति हाथ में हो तो श्रेय मिलने में कठिनाई नहीं पड़ती। भावना में प्रखरता हो तो परिस्थितियाँ दुर्बल होते हुए भी सफलता का सुयोग बन पड़ता है। जो भगवान के प्रवाह से जुड़ने का प्रयत्न करते हैं, उनके साथ भगवान भी गज और ग्राह जैसी भूमिका निभाने के लिए स्वयं दौड़ आते हैं।

## क्षतिपूर्ति की सुनिश्चित गतिशीलता

ग्रह नक्षत्रों के परिभ्रमण की अपनी-अपनी परिधि होती है। वे अपनी-अपनी कक्षाओं में ही परिभ्रमण करते हैं। समुद्रों की भी अपनी-अपनी सीमा मर्यादा है। अणु-परमाणुओं के अपने-अपने मध्यवर्ती नाभिक होते हैं। उन्हीं के नियंत्रण में अपने-अपने क्रिया-कलाप गतिशील रहते हैं। सेना के कप्तान अपनी-अपनी कंपनियों और टुकड़ियों का सूत्र-संचालन करते हैं। सब कुछ एकत्र होते हुए

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन १३३**

भी वे विभाजन नियंत्रण की दृष्टि से अपनी-अपनी उपयोगिता और आवश्यकता प्रमाणित करते हैं। यों समूचा शरीर एक है, पर उसकी गतिशीलता अंग-प्रत्यंगों के समन्वय और सहकार पर निर्भर है।

विश्व व्यवस्था का उल्लेख यों एक शब्द में भी किया जा सकता है, फिर भी अनेक भाग-उपभागों के अपने-अपने दायित्व और क्रिया-कलाप बँटे हुए हैं। सभी मिल-जुलकर काम करते और एक इकाई के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। नव युग की परिवर्तन प्रक्रिया यों स्पष्ट है पर उसको भी अपनी-अपनी परिधि में वर्गीकृत किया जा सकता है।

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, निर्माणात्मक और नियंत्रणात्मक उसकी अनेकों व्यवस्थाएँ हैं। गंतव्य का लक्ष्य एक होते हुए भी उस तक पहुँचने के लिए अनेकों उपमार्गों की व्यवस्था बनी होती है। पथिक उनमें से किसी भी रेखा को अपनाते हुए चल सकता है और जिधर-तिधर चलते-घूमते उसी लक्ष्य तक पहुँचता है, जहाँ सभी रेखाएँ एक केंद्र पर जा मिलती हैं। नव सृजन के लिए भी कितने ही विभाग और विभाजन गिने जा सकते हैं, पर वे सब एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए गतिशील रहते हैं। नियामक सत्ताएँ अपने-अपने विभाग-विभाजन को ही संभालती हुई एकता और एक प्रयोजन को पूरा करने में संलग्न रहती हैं।

नियंता इन दिनों महान परिवर्तन की प्रक्रिया में संलग्न है। सहयोग तो छोटे-छोटे घटकों का भी होता है, पर बड़े दायित्व बड़ी प्रतिभाओं की नियंत्रण रेखा में ही आते हैं। निराकार भगवान अपने प्रयोजन साकार व्यक्तियों द्वारा ही संपन्न कराता है। इन प्रयोजनों के लिए विशेष रूप से चुने गए लोगों को प्रतिभावान, प्राणवान, वरिष्ठ, विशिष्ट, नेता, अधिकारी आदि नाम से जाना जाता है। यही प्रक्रिया इन दिनों भी अपने ढंग से संपन्न हो रही है। एक ही बड़े निर्धारण में सामान्य श्रेणी के अनेकों श्रमिक, कारीगर संलग्न होते और उसे मिल-जुलकर पूरा करते हैं।

अनेकों प्रतिभाएँ इन दिनों भी सफाई और चुनाई के दुहरे कार्य करने में संलग्न हैं। निर्माण यों ही नहीं हो जाता उसका प्रथम चरण सफाई के रूप में देखा जाता है। पेट जब मल-मूत्र से खाली हो

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३४**

जाता है, उसके उपरांत ही पौष्टिक आहार ग्रहण करने और पचाने का सिलसिला चलता है। रक्त, माँस, अस्थि आदि बनने के लिए एक के बाद दूसरे का उपक्रम अपनाते हुए ही आगे बढ़ता है। मुद्दतों से संचित गंदगी अनाचार, दुराचार के रूप में जहाँ-तहाँ भरी देखी जा सकती है। उसकी सड़न भी अपने ढंग से अवांछनीयता का परिचय देती और जगह घेरे रहती है, पर इस सब को सर्वप्रथम हटाना-मिटाना ही पड़ता है। इसके उपरांत ही स्वच्छता का सोपान और अभिनव निर्माण का क्रियाकलाप आगे बढ़ता है। सफाई तोड़-फोड़ जैसी लगती है और चुनाई-ढुलाई को सृजन कहा जाता है। दोनों के आकार-प्रकार भिन्न होते हुए भी समग्र रूप से एक ही अभिनव स्वरूप में विनिर्मित करता है।

मनुष्य कृत क्रांतियाँ छोटे-छोटे दायरे और सीमित आकार प्रकार में संपन्न होती रहती हैं, पर नियंता के क्रिया-कलाप एक साथ चलाते और भिन्नता को एकता में बदलते हैं। नव निर्माण की समग्र रूपरेखा उन प्रयोजनों की पूर्ति में संलग्न है, जो शासन व्यवस्था के साथ जुड़े हुए बहुमुखी प्रयोजनों की पूर्ति करते हैं। अर्थतंत्र की अपनी दिशाधारा है। उसमें गड़बड़ी आ जाने पर ही विषमता के खाई-खड्ड दीख पड़ते हैं। समतल बनाने वाली प्रक्रिया भी इन्हीं दिनों चल रही है। शिक्षा और सभ्यता के अभाव में हर दिशा में अनगढ़पन दीख पड़ता है। इस कारण उत्पन्न होने वाली अनगढ़ता भी समतल बनने के प्रयोजन के साथ ही संपन्न होती है। इसलिए भी भविष्य में कमी की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। नशेबाजी से लेकर चटोरेपन जैसे दुर्व्यसन भी प्रायः एक ही समय में पनपते हैं। इनको भी एक ही साथ में हटाना बटोरना पड़ता है। वही हो भी रहा है। बिखरी हुई जिंदगी अपनी कुरूपता का परिचय एक ही साथ मिल-जुल कर देती है। इसे भी सुव्यवस्था में बदलने के लिए एक ही समय में अनेकों तरह के क्रिया-कलाप संपन्न करने पड़ते हैं। वही हो भी रहे हैं।

बहुमुखी प्रयोजनों को उनके कर्ता एक ही साथ पूरे नहीं कर लेते। उसके लिए शिल्पी अपने-अपने प्रयोजनों को अपने-अपने ढंग से पूरे करते हैं। मशीन के छोटे-बड़े कलपुर्जे अलग-

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३५**

अलग ढलते हैं। बाद में उन सबको मिलाकर एक समग्रता विनिर्मित हो जाती है। इन दिनों उभरते प्रयास भी इसी प्रकार अपने-अपने हिस्से की क्रिया-प्रक्रिया संपन्न करने में जागरूकतापूर्वक संलग्न हैं।

राजनेताओं को ऐसी संरचना में संलग्न देखा जा सकता है, जिसमें अव्यवस्था और अराजकता जैसी विषमता मिट सके। अर्थशास्त्रियों में वह सूझबूझ उठ रही है, जिससे एक जगह अनावश्यक संग्रह और दूसरी जगह गहरी खाई जैसी दरिद्रता असंतोष और विग्रह खड़े न करे। धार्मिक क्षेत्र में ऐसी सदाशयता उभर रही है, जिससे एकता और समता की शालीनता उभरे और स्नेह सद्भाव का वातावरण बने। धर्म के नाम पर मरने और मारने की परिपाटी का अब एक प्रकार से अंत ही होने जा रहा है। धनाध्यक्षों की पूँजी अपने उस स्थान से विरत हो रही है, जिससे अवांछनीय प्रयत्न और अनाचार के प्रचलन द्वारा किन्हीं को सुसंपन्न बनने का सहज अवसर मिल जाया करता और कुछ को भूखे-नंगे रहकर किसी प्रकार दिन काटने पड़ते हैं।

औसत आदमी को संकीर्ण स्वार्थपरता ही सूझती है। उस पर अनावश्यक संग्रह की लिप्सा ही छाई रहती है। अपव्यय से ही अहंकार की पूर्ति होती रहती है। अब उस प्रचलन का अंत ही समझना चाहिए। कारण कि चिंतन की दिशाधारा उलट रही है। स्वकेंद्रित रहने वालों के मन इस प्रकार मचल रहे हैं कि उनके द्वारा पुण्य-परमार्थ की ऐसी प्रक्रिया बन पड़े, जो संतोष और समाधान के आधार खड़े करे। वासना और तृष्णा की हविश घट जाने पर हर किसी के पास इतना समय और इतना साधन बच जाता है जिसके सहारे अपनी ही नहीं, दूसरों की भी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। अपने को उठाने और दूसरों को उठाने की परिस्थितियाँ विनिर्मित करने में कहीं किसी को कमी न पड़े। वस्तुओं की पहले भी कमी नहीं थी। उनका उपयोग करने के स्थान पर जब लोग अवांछनीय दुरुपयोग करने लगते हैं तो औचित्य के स्थान पर अनौचित्य का नगाड़ा बजने लगता है। इन दिनों भी ऐसा ही हो रहा है, पर आवश्यक नहीं कि अवांछनीयता

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / ३६**

जहाँ की तहाँ बनी रहे। उसे बदल देने वाली शक्तियाँ अपना काम न करें।

संतुलन ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। वह यदाकदा ही गड़बड़ाता है। इतने पर भी वह गड़बड़ी देर तक टिकी नहीं रहती। सुव्यवस्था अपना स्थान दुबारा ग्रहण कर लेती है। यह परिवर्तन उपक्रम भी शाश्वत है। गंदगी तो फैलती ही है, पर उसकी सफाई करने वाले भी प्रमाद नहीं बरतते। टूट-फूट होती रहती है, पर मरम्मत करने वालों की भी कमी नहीं रहती। रुग्णता उठती रहती है, पर औषधि और चिकित्सकों का भी अभाव नहीं रहता। मरने वाले मरते हैं, पर उनके बिना धरती जनसंख्या से रहित नहीं हो जाती। स्रष्टा नई सृष्टि संरचना और धरती पर चलने वाली गतिविधियों को विधिवत बनाए रहता है। पिछले दिनों की क्षति द्रुतगामी तो अधिक रही है, पर उसकी पूर्ति का समय भी तो आ पहुँचा। अगले ही दिनों हम नव-सृजन में संलग्न शक्तियों को पूरी तरह सफल होते हुए देखेंगे।

## नौ दिन की सत्र साधना

इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य के अभियान को अपने समय का अत्यधिक व्यापक और असाधारण महत्वपूर्ण आंदोलन कहा जा सके तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

इनमें सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए शांतिकुंज, हरिद्वार को एक ध्रुव केंद्र मानकर कदम बढ़ाए गए हैं। इस आश्रम में आंदोलन से संबंधित विभिन्न प्रयोजनों के निःशुल्क प्रशिक्षण की सर्वतोमुखी व्यवस्था बनाई गई है।

शिक्षार्थियों की संख्या अत्यधिक और आश्रम में स्थान सीमित होने के कारण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम मात्र नौ-नौ दिन का रखा गया है ताकि कम समय में अधिक लोगों को योग्यता संवर्धन का लाभ मिल सके और बड़े उत्सव प्रयासों में प्रशिक्षित प्रतिनिधि की तरह काम कर सकें।

प्रवचन अभ्यास, संगीत की काम चलाऊ शिक्षा का प्रबंध है और यज्ञ आयोजनों की विधि व्यवस्था इसी अवधि में सिखा दी जाती

## आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३७

है। साप्ताहिक आयोजन के रूप में भी इतनी जानकारी मिल जाती है कि उन आयोजनों को कुशलतापूर्वक संपन्न कराया जाता रहे।

जिन पाँच कार्यक्रमों को आंदोलन का अंग मानकर चला गया है। उन सभी का इतना अभ्यास इन थोड़े दिनों में ही कराने का प्रयत्न किया जाता है कि शिक्षार्थी वापस लौटने पर इन सभी कार्यक्रमों का सूत्र-संचालन अपने क्षेत्र में कर सकें। पुरुषों की तरह उत्साही महिलाएँ भी शिक्षण प्राप्त कर सकती हैं। छोटे बच्चों को साथ लेकर आने की मनाही है।

उपरोक्त नौ दिन का शिक्षण पूरे साल निरंतर चलता रहता है। हर महीने की तारीख १ से ९, ११ से १९ एवं २१ से २९ की तिथियाँ निर्धारित हैं। बीच-बीच में एक-दिन खाली छोड़ा गया है जिससे आने-जाने वालों को, तीर्थ दर्शन करने वालों को सुविधा रहे।

धर्म धारणा, सेवा-साधना के आधार पर तो युग सृजन होना ही है। साथ ही अध्यात्म शक्ति के संवर्द्धन के बिना इतनी महत्त्वपूर्ण योजना की भागीदारी निभ नहीं सकती। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षार्थियों के लिए प्रशिक्षण के अतिरिक्त साधना उपक्रम का भी विधि-विधान रखा गया है। प्रातः तीन घंटे साधना में और पाँच घंटे प्रशिक्षण में लगते हैं। शिक्षार्थियों के लिए आश्रम के निर्धारित अनुशासन का परिपालन आवश्यक है।

साधना में (१) गायत्री जप (२) यज्ञ कृत्य (३) ध्यान (४) सात्विक आहार (५) पूजा आरती, नाद योग, प्राणायाम जैसी साधनाएँ इस क्रम से रखी गई हैं कि नियत अवधि में ही सारी प्रक्रिया भली प्रकार संपन्न होती रहे।

साधना समय में शिक्षार्थियों को आश्रम की परिधि में ही रहना पड़ता है। इधर-उधर सैर-सपाटे करने की छूट नहीं मिलती। जिस प्रकार माता के गर्भ में भ्रूण निर्धारित अनुशासन में ही रहता है, उसी प्रकार नौ दिन के इस शिक्षण काल में अनुबंधित अनुशासित रहने के लिए कहा जाता है। श्रद्धालु साधकों के लिए ही उपरोक्त शिक्षण साधना में प्रवेश मिलता है। अनुशासन न पालने वाले, छूट के रोग से बीमार, शारीरिक-मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ लोगों को भी प्रवेश नहीं मिलता।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३८**

## नव सृजन आंदोलन

साधु और ब्राह्मण के व्यक्तित्व प्राचीनकाल में सतयुग का कारण थे या सतयुग के आगमन की पहचान साधु-ब्राह्मण स्तर के योगियों-तपस्वियों की अभिवृद्धि है, इसका विश्लेषण सही ढंग से नहीं हो सकता। दोनों प्रयोजन अन्योन्याश्रित हैं। बसंत में फूल खिलते हैं या जब फूल खिले तब बसंत आ गया समझा जाए। इस विवाद का समाधान यही है कि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे के साथ पूरी तरह संबद्ध हैं।

सतयुग की वर्तमान वापसी के साथ दो विभूतियाँ समान रूप से प्रकट हो रही हैं। एक देव शक्तियों का संगठित समन्वय, दूसरा आत्मबल संपन्न प्रतिभाओं का उत्कृष्ट प्रयोजन के लिए संगठन, एकत्रीकरण; यह दोनों ही मिलकर उस आत्मशक्ति का अभिवर्द्धन उत्पादन करते हैं जो नवयुग का देवलोक अपनी इसी धरती पर अवतरण करने में समर्थ हो सकती है।

साधनात्मक प्रयोजनों के लिए वर्तमान परिस्थितियों में जो सर्वसुलभ है, उन यज्ञों का आयोजन लाखों की संख्या में किया जा रहा है। इसे देव शक्तियों के अवतरण में समर्थ धर्मानुष्ठान कहा गया है। इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति और समुदाय कहाँ से तलाश किए जाएँ। इसके लिए जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरने की अपेक्षा इतनी व्यवस्था उस घर परिवार में की जा रही है जिसका कि उधार किसी प्रयोजन के लिए हुआ है। कोयला लंबी अवधि तक खदान में पड़ा रहे तो हीरा बन जाता है। पारस और लोहा का संपर्क सोने का आविर्भाव करता है। जिनके पास पूर्वजन्मों के सुसंस्कार का भंडार-संग्रह है, ऐसी आत्माओं को पैनी दृष्टि से खोज-खोजकर एकत्रित किया गया है, और उनको सर्वत्र हीरक हार की तरह पिरोया गया है। यह समुदाय अखंड ज्योति परिवार है। इसे गृहस्थों की तरह रहने वाला साधु समुदाय कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में तपस्वी, परिव्राजकों, वानप्रस्थों का सर्वतोमुखी प्रशिक्षण आरण्यकों में हुआ करता था। इस दिनों समय के अनुरूप अखंड ज्योति के सदस्यों का परिकर भी उसी आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है। इसे सामयिक भाषा में प्रस्तुत

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /३९**



किया गया—युग धर्म या समय धर्म कह सकते हैं। लाखों की संख्या में विगत पचास वर्षों में ऐसी प्रतिभाएँ परिष्कृत की गई हैं। उनमें से वरिष्ठों की एक लाख संख्या अविलंब चुनी गई है और उनके जिम्मे यज्ञों की प्रक्रिया सौंपी गई है। जो इतने समर्थ हैं, जो इतना भार वहन कर सकने की क्षमता से संपन्न हैं, उन्हें सफलतापूर्वक खोज लिया गया है और प्रतिज्ञापूर्वक यह अनुबंध किया गया है कि अगले कुछ वर्षों की अवधि में इस दिव्य साधना के महापुरश्चरण को संपन्न कर लिया जाए।

इसी प्रसंग में दूसरा आयोजन है—एक करोड़ देव मानवों का संगठन। इन्हें इस दिव्य योजना का भागीदार भी कहा जाएगा। आयोजन की पूर्णाहुति में सम्मिलित होने का व्रत लेने वाले व्यक्तिगत रूप से जहाँ अपना निजी और सामाजिक आचरण दिव्य व्रतधारियों जैसा बनाएँगे, वहाँ उन्हें दैनिक जीवन में एक काम और करना पड़ेगा कि नित्य प्रति दो घंटे का समय लोक मानस परिष्कार के लिए दिया करें। सर्वविदित है कि इन दिनों अनेकानेक विकृतियों के घटाटोप छाए हुए हैं। उनका एकमात्र कारण व्यापक विचार विकृति ही है। इसे आस्था संकट या भावनात्मक दुर्भिक्ष भी कहा जा सकता है। यदि ज्ञानदान की प्रक्रिया द्वारा लोकमानस का परिमार्जन किया जा सके, तो पुरातन परिवर्तन होने में कोई कठिनाई शेष न रह जाएगी। इसी प्रयोजन के लिए प्रज्ञा महापुरश्चरण के अंतर्गत देव परंपरा का निर्वाह कर सकने वाले एक करोड़ भागीस्थों को संघबद्ध किया गया है।

युग निर्माण की प्रक्रिया एक से पाँच के गुणन क्रम को अपनाकर अग्रगामी हो रही है। इस का लक्ष्य एक से पाँच, पाँच से पच्चीस, पच्चीस से एक सौ पच्चीस, एक सौ पच्चीस से छः सौ पच्चीस वाली प्रक्रिया को अपनाए रहकर संसार की वर्तमान आबादी छः सौ करोड़ को अपने दिव्य आंचल में समेट लेने का है। इस योजना का बहुत छोटा अंश प्रस्तुत संख्या को शीघ्र ही एक करोड़ बना देने का है। इसके लिए कहीं बाहर दौड़-धूप नहीं करनी पड़ रही है। गायत्री परिवार के सदस्य और सहयोगी मिलकर ही इस निर्धारित संख्या को इन्हीं दिनों पूरी कर लेंगे।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४०**

शीघ्र ही यह देव संगठन और उनमें भागीदारों की संख्या इतने दिनों के प्रयत्न से एक करोड़ तक पहुँच जाएगी। इसे आशा अपेक्षा ही नहीं, वरन पूर्ण विश्वास भी समझा जा सकता है।

न्यूनतम दो घंटे के हिसाब से एक करोड़ व्यक्तियों के दो करोड़ घंटे प्रतिदिन होते हैं। इसे पच्चीस लाख मानवी श्रम दिन कहा जा सकता है। यह बड़ी संख्या है। इतने लोगों का श्रमदान विश्व के बड़े से बड़े काम संपन्न कर सकता है। वह करके भी रहेगा। यह श्रैष्ठता की ओर बढ़ते हुए कदम आगामी कुछ वर्षों में अभीष्ट निर्धारण दो करोड़ तक पहुँचे और देव संगठन दो लाख बने तो इसमें न तो किसी को आश्चर्य होना चाहिए और न अत्युक्ति का संदेह करना चाहिए। यह युग संधि के कुछ ही वर्षों का निर्धारण है। इक्कीसवीं सदी के सौ वर्षों में बात कहाँ से कहाँ पहुँचेगी इसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है। इतने अधिक व्यक्ति और इतनी जनसंख्या का प्रभाव किसी बड़े से बड़े लक्ष्य की पूर्ति कर सकता है। युग परिवर्तन की महान योजना की समग्र संभावना इसी प्रयास के अंतर्गत आ जाती है।

दो घंटे समय न्यूनतम है। प्रस्तुत योजना में ऐसे भी सहयोगी बड़ी संख्या में हैं जो अधिकतम पूरे जीवन का समय पुरातन साधु-ब्राह्मण परंपरा में अनिवार्य समर्पित करेंगे और योजना को उस परिधि तक पहुँचा देंगे, जिसकी कि अभी तक कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इस तरह परिवर्तन की सुनिश्चित संभावना आंकी जा सकती है।

दो घंटे नित्य देने वालों का प्रमुख कार्य विचार क्रांति से लोकमानस का परिष्कार है। इसके लिए अत्यधिक मात्रा में युग साहित्य सृजा गया है। जिसे झोला पुस्तकालयों के माध्यम से ज्ञान रथों द्वारा शिक्षितों को बिना किसी शुल्क लिए घर-घर पहुँचाना, पढ़ाना और वापस लेने की प्रक्रिया से पूरा किया जाता है। बिना पढ़ों को इस युग चेतना को सुनाने का उपक्रम चलाया जाता है। इसी योजना के अंतर्गत टेपरिकार्डर पर बजने वाले कैसिट तथा सी० डी० टेपों की विशाल योजना बनाई गई है, जिसके अंतर्गत युग संगीत के सैंकड़ों गीतों तथा भाषणों का

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४१**

समावेश है। इन्हें लाउडस्पीकर पर बजाकर और जन-जन को घर-घर, मुहल्ले मुहल्ले सुनाकर व्यापक अलख जगाने की प्रक्रिया को पूरा किया जाता है।

गाँव-गाँव युग संदेश पहुँचाने के लिए सैकड़ों प्रचार वाहन देश के कोने-कोने में निरंतर भ्रमण करते रहे हैं। इन सत्प्रयासों की सम्मिलित प्रक्रिया प्रत्येक विचारशील को युग चेतना के अनुरूप मोड़-मरोड़ सके, ऐसी योजना विनिर्मित हुई है। यह संकल्प ऐसे हैं, जिनके बारे में यही कहा जा सकता है कि वे पूरे हुए बिना बीच में रुकेगें नहीं।

यह प्रमुख एवं प्रथम कार्यक्रम है। अपने देश में मात्र ६५ प्रतिशत शिक्षित हैं। शेष अशिक्षित सर्वसाधारण को स्कूली शिक्षा कहाँ उपलब्ध है। इनके लिए कोई व्यवस्थित शिक्षा क्रम नहीं है। कारण कि पुरुषों को रात्रि में और महिलाओं को तीसरे प्रहर थोड़ा अवकाश मिलता है, जिसमें पढ़ने-लिखने की कुछ व्यवस्था बन सके। यह कार्य समयदानी ही कर सकते हैं। दो घंटा प्रतिदिन देने वालों को दूसरा कार्य यही सौंपा गया है कि वे अपने समीपवर्ती क्षेत्र के अशिक्षितों और अनपढ़ों को साक्षर-शिक्षित बनाने का काम करें।

साक्षरता तो एक वर्ष के प्रयत्न से काम चलाऊ हो सकती है, पर बात उतने से ही कहाँ बनती है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक समस्याएँ असंख्यों ऐसी हैं जिनके संबंध में नए सिरे से नए विचारों को अपनाया जाना आवश्यक है। इस प्रयोजन के लिए अनेक भाषाओं में एक घरेलू पुस्तकालय सीरीज का प्रकाशन किया जा रहा है। जिसके सहारे समग्र विचार क्रांति के हर पक्ष को युग धर्म के अनुरूप समझना, समझाया जाना संभव हो सके। यह पुस्तकालय भी बिना किसी शुल्क के घर-घर, जन-जन तक अपना विचार भी पहुँचाएंगे। जो खरीदेंगे उन्हें भी प्रायः लागत के करीब ही मूल्य देना पड़ेगा। झोला पुस्तकालय ज्ञानरथ साहित्य प्रायः नए साक्षरों की आवश्यकता ही पूरी करेंगे। यों इसमें प्रयुक्त साहित्य भी कम नहीं रहेगा।

तीसरा कार्यक्रम है—महिला जागरण का। आधी जनसंख्या को विचारशील, सुसंस्कृत, स्वावलंबी बनाना एक बड़ा काम है।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४२**

इसमें वयोवृद्ध और सुयोग्य महिलाओं को बड़ी संख्या में जुटाया जा रहा है। कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण हर घर में विशेषतया महिलाओं में प्रचलित होना इसलिए आवश्यक है कि वे सुविधा के समय में कुछ आजीविका कमा सकें और आर्थिक दृष्टि से सर्वथा परावलंबी न रहें।

चौथा कार्य साप्ताहिक सत्संग के माध्यम से कुरीतियों के विरुद्ध प्रचंड आंदोलन का सूत्र संचालन करना है। नशेबाजी, दहेज एवं धूमधाम की खर्चीली शादी, बाल विवाह, पर्दाप्रथा, जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच की मान्यता, मृतक भोज जैसे कुप्रचलनों को समाप्त करना, जेवर, फैशन जैसे निमित्त कारणों में धन का अपव्यय जैसे अनेकों कुप्रचलनों के विरुद्ध संपर्क आंदोलन खड़े करना। स्वच्छता, शिशुपालन, जनसंख्या की अभिवृद्धि, आहार-विहार की अनियमिता जैसे अनेकों ऐसे कारण हैं जिनमें इन्हीं दिनों सुधार की महती आवश्यकता है।

पाँचवाँ आधार वृक्षारोपण, घरेलू शाक-वाटिका, पुष्पोद्यान, गोबर गैस, धूम रहित चूल्हा आदि कितने ही नए अन्य क्षेत्र हैं जिन्हें अपनाया जाना सर्वतोमुखी प्रगति के लिए आवश्यक है।

जहाँ जिस प्रकार की परिस्थितियाँ आवश्यक हों वहाँ उपरोक्त आधारों में से किन्हीं को भी समयदानी अपनी योग्यता के अनुरूप चुन सकते हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक काम हैं, जिन्हें सरकारी, गैर-सरकारी या श्रमदान-सहयोग के आधार पर आरंभ किया और आगे बढ़ाया जा सकता है। जहाँ अनेक समयदानी हों, वहाँ मिल-जुलकर अनेक कार्यक्रमों को अपनी-अपनी योग्यता, अभिरुचि एवं सुविधा के अनुसार चुना एवं विभाजित किया जा सकता है। जिनके उल्लेख उपरोक्त पाँच कार्यक्रमों के अंतर्गत नहीं हुए हैं उन्हें भी स्थानीय आवश्यकताओं को देखते हुए सुधार एवं प्रगति प्रयोजनों के लिए चुना जा सकता है। इस प्रकार जहाँ दस-बीस समयदानी हों वहाँ एक साथ ही सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के कितने ही कार्य एक साथ हाथ में लिए जा सकते हैं और उन्हें पूरा करने में सहयोग प्रदान करते रह सकते हैं। इनके

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४३**

सम्मिलित परिणाम कुछ ही समय में ऐसे दृष्टिगोचर हो सकते हैं, जिनसे समय के परिवर्तन का वातावरण उत्साहवर्द्धक रीति से दृष्टिगोचर होने लगे।

## आत्मशक्ति का उपार्जन एवं सुनियोजन

बाहर की वस्तुओं के संबंध में मनुष्य को बहुत-सी जानकारीयाँ रहती हैं। उनके द्वारा होने वाली हानि तथा उठाए जा सकने वाले लाभों का भी सहज बुद्धि से अता-पता रहता है, किंतु आश्चर्य इस बात का है कि अपने आपके संबंध में नगण्य जानकारीयाँ ही रहती हैं। जो जाना जाता है उससे लाभ कैसे उठाया जाए और हानि से कैसे बचा जाए? इस संबंध में भी इतना ही परिचय होता है, जिसे वस्तुस्थिति की तुलना में नगण्य ही कहा जा सके।

शरीर के छोटे-बड़े अंग अवयवों को भली प्रकार देखा-समझा भी नहीं जाता। इतने पर भी उनकी सशक्तता आश्चर्यजनक होती है। किसी बड़े मिल कारखाने को चलाने में जितनी बिजली खर्च होती है उसकी अपेक्षा शरीर संचालन में, उसके कल-पुर्जों को गतिशील रखने में ऊर्जा कहीं अधिक खप जाती है। फिर भी मोटी दृष्टि में इस उपयोग का कुछ पता नहीं चलता और लगता है कि शरीर अपने आप जीवित है। इसका ढर्रा अपने आप चल रहा है। खाने-पीने का क्रम अनायास ही चलता रहता है। एक महिला घरेलू काम-काज करने में जितनी शरीर शक्ति खर्च कर लेती है, वह उतनी होती है कि उसके बल पर समूचे भू-मंडल की कई परिक्रमाएँ लगाई जा सकती हैं। हृदय, आमाशय, गुर्दे आदि अवयव निरंतर कार्यरत रहकर जितनी सामर्थ्य खर्च करते हैं, उसके संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि मोटी जानकारी की तुलना में वह हजारों गुनी अधिक होती है। इस विद्युत उत्पादन और उपयोग का लेखा-जोखा लिया जा सके तो प्रतीत होगा कि बाहरी दुनियाँ के बारे में हम भले ही कुछ आधा-अधूरा जानते हों, पर अपने संबंध में जितना समझा गया है उसे पर्वत की तुलना में अणु मात्र ही समझा जाना चाहिए।

### आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४४

मानसिक शक्ति के संबंध में यही बात है। सरकस में अनोखी करामातें दिखाने वाले, खेल के मैदानों में सामर्थ्य के कीर्तिमान स्थापित करने वाले जितने आश्चर्यजनक लगते हैं उससे कहीं अधिक मस्तिष्क की चेतनसत्ता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक, कलाकार, मनस्वी जो प्रस्तुतीकरण करते रहते हैं उससे प्रतीत होता है कि मानसिक सूझबूझ लगती तो नगण्य है, पर उसकी कृतियों का चमत्कार किसी बड़े से बड़े कौतूहल से बढ़कर है। व्यसनी, प्रपंची, अपराधी जैसी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं, उसे देखते हुए बाजीगर की उपमा दी जा सकती है। शरीर से लेकर मानसिक क्षमता का समग्र आकलन कर सकना तथाकथित समर्थ व्यक्ति के लिए कठिन है, जो उनका धारणकर्ता, निर्माता, प्रयोक्ता माना जाता है। चेतना ही है जो कुछ क्षण के लिए अवरुद्ध हो जाए तो समझना चाहिए कि समूचा खेल देखते-देखते बिखर गया। कुछ क्षण पहले का जीवित व्यक्ति इस स्थिति में पहुँचते भी देखा गया है जिसे मरते ही जल्दी-से-जल्दी दूर हटाने का प्रयत्न किया जाए। शरीर अद्भुत है, उसी का पुरुषार्थ और रसास्वादन है जो जड़ समझे जाने वाले पदार्थों को सचेतन से भी अधिक सरस अनुभव करता है। अशक्त को शक्तिशाली बना देता है। मनुष्य ही है जो परमाणु जैसी नगण्य इकाई को शक्ति सत्ता के रूप में प्रकट करता है। फिर सचेतन के संबंध में तो कहा ही क्या जाए? वह अद्भुत है। स्रष्टा की असीम क्षमता उसकी छोटी-सी दीखने वाली इकाई में लगभग पूरी तरह समाई हुई है। जड़ पदार्थों को सशक्त, सक्षम और अनुभूतिमय बना देने में उसी का कौतूहल काम करता देखा जा सकता है।

इस सचेतन सत्ता को प्राण कहते हैं। प्राणियों की चित्र-विचित्र हरकतें-हलचलें मात्र इसीलिए दृष्टिगोचर होती हैं कि उनमें प्राण की सशक्तता काम करती है। यदि वह क्षीण हो जाए तो समझना चाहिए कि अशक्ति के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं बचा। दुर्बल, दीन, असहाय, असमर्थ मात्र उन्हें कहते हैं जिनकी चेतना लड़खड़ा जाती है। तब फिर शरीर के अंग-अवयव भी जीवित रहने पर भी निर्जीववत दीख पड़ते हैं। इसको शरीर से संबंध छूट जाना कहते हैं, जिसे जीवन का अंत कहा जाता है।

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४५**

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि चेतना शरीर और मन पर अपना समुचित आधिपत्य बनाए हुए हो तो फिर काय कलेवर के दुर्बल रहने पर भी व्यक्ति असीम सामर्थ्य का धनी बना रहता है। गांधी जी की ऊँचाई पाँच फुट दो इंच थी और वजन ९६ पौंड। इतने पर भी उनकी चेतना इतनी समर्थ थी कि करोड़ों जन साधारण में प्रचंड प्राण फूँका। व्यापक जन मानस का स्तर कुछ-से-कुछ बनाकर दिखाया। समर्थ शासकों को धूल चटाने में सफल रहे। विश्व के कोने-कोने में अपने ढंग की अनोखी चेतना का संचार किया। यह शरीर या बुद्धि का नहीं, प्राण चेतना की समर्थता का ही चमत्कार था। ऐसे उदाहरणों की इस संसार में कमी नहीं जिनकी प्राण चेतना ने साधनों का एक प्रकार से अभाव रहते हुए भी असाधारण उपलब्धियों का पर्वत खड़ा कर दिखाया। तपस्वियों और सिद्ध पुरुषों द्वारा व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं वातावरण को किस प्रकार समय-समय पर पलटा और सुधारा गया है, यह विवरण भी इतिहास का सर्वविदित प्रसंग है।

मनुष्य को शक्ति का स्रोत कहा जा सकता है। वह प्राणियों को भी इच्छानुसार परिवर्तित करता और पदार्थों को भी कुछ से कुछ बना देता है। घटनाएँ दुःख-सुख की, हानि-लाभ की निमित्त कारण प्रतीत होती हैं, पर वास्तविकता इससे भिन्न है। चेतना की अनुभूतियाँ ही चित्र-विचित्र अनुभव करतीं और तरह-तरह के अनुभव कराती रहती हैं। घटनाएँ एवं वस्तुएँ तो उस प्रसंग में नाममात्र की भूमिका निभा पाती हैं।

शास्त्रकारों का कथन है कि जिसने अपने को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। जिसने अपनी सत्ता और महत्ता का परिचय प्राप्त करने से लेकर प्रयोग करने तक की विद्या को जान लिया उसे समग्र सत्ता संपन्न एवं अति महत्त्वपूर्ण ही समझना चाहिए।

संपदा किसके पास कितनी है? कहाँ है? उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाए? पाने के उपरांत उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग क्या है? यह सब जान लेना ही संपदा का होना और लाभ उठाना

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन / ४६**

कहलाता है। जिनके पास यह जानकारी लाभ पाने का उपक्रम नहीं है, जिन्हें ऐसी कुछ जानकारी नहीं है, उसके पैरों तले खजाना दबा पड़ा हो तो भी उसका उपयोग नहीं। रत्नराशि पास में होने पर भी यदि उसे काँच का टुकड़ा भर समझा जाए तो व्यक्ति धनाध्यक्ष होते हुए भी गरीबी के दिन गुजारेगा। मनुष्य की सबसे बड़ी संपदा चेतना, पास होने का कारण आत्मशक्ति ही है। शरीरबल, बुद्धिबल आदि सभी उसके सामने तुच्छ हैं।

सही उपयोग विदित होने पर साधारण सी घास-पात भी संजीवनी बूटी सिद्ध हो सकती है। जानकारी के अभाव में सब कुछ निरर्थक सा है। सही उपयोग ही समुचित लाभ उठाने की स्थिति विनिर्मित करता है। बखरेते चलने पर तो सब कुछ बरबाद हो जाता है। छलनी में दूध दुहने पर तो दुधारु गाय का मालिक भी हाथ मलता और दुर्भाग्य को कोसता है।

आत्मबल भी अन्य बलों की तरह लोगों के पास होता है, पर उसे संभालना, संजोना न बन पड़े तो कुछ लाभ उठा सकना संभव नहीं। आतिशी शीशे पर सूर्य की किरणों को एकत्रित कर लेने पर आग जलने लगती है। बंदूक की नली द्वारा सही निशाने पर छोड़ी गई बारूद भयंकर विस्फोट करती और अपनी शक्ति का परिचय देती है। आत्मशक्ति होने पर भी उसको एकाग्र किए बिना सामर्थ्य की वृद्धि नहीं होती। इसीलिए योग साधनाओं, तपश्चर्याओं द्वारा आत्मशक्ति को उभारना, एकत्रीकरण करना और वरिष्ठता का परिचय देना संभव होता है। एकाग्रता, एकांत साधना, मौन साधना जैसे प्रयोग इसीलिए किए जाते हैं कि आत्मशक्ति का चमत्कारी उपयोग बन पड़े। इसी आधार पर सिद्ध पुरुष अनेकों दिव्य विभूतियों के अधिष्ठाता बनते हैं और वह कर दिखाते हैं जो सामान्यजनों की कल्पना से भी बाहर होता है। नर-पशु के समतुल्य विचरण करने वाले भी यदि ऋद्धि-सिद्धियों के अधिष्ठाता बन सकें तो समझना चाहिए कि उनने देव पुरुष की स्थिति प्राप्त कर ली।

योगीजन अपनी दिव्य शक्ति का एक कण भी बिखरने नहीं देते। उसे सँभाल-सँजो कर रखते हैं। जबकि साधारण जन अपना समय निरर्थक क्रियाकलापों में बरबाद करते रहते हैं। सघन वनों

**आत्मशक्ति का उच्चस्तरीय नियोजन /४७**



में एकांत सेवी, गुफा निवासी प्रयोगरत सिद्ध पुरुषों द्वारा असाधारण क्षमताएँ कैसे प्राप्त की जाती हैं ? इसका लंबा इतिहास है। ऋषि-महर्षि यही करते थे। विष्णु-दिनों भी योगी अरिविंद, महर्षि रमण आदि ने इसी मार्ग पर चलते हुए सिद्धियाँ पाई। अपना, दूसरों का, विश्व की विविध समस्याओं का समाधान किया। अनुभवों बताते हैं कि जिसका प्राणवश में है, उसके लिए सब कुछ उसकी मुट्ठी में है, विभूतियों की उसके पास कुछ कमी नहीं रहती। पार्वती, भागीरथ, ध्रुव आदि की तपस्याओं के प्रतिफल सर्वविदित हैं।

वह राजमार्ग अभी भी सभी के लिए खुला हुआ है। तप साधना के सत्परिणामों की परंपरा अभी भी यथावत है। यह दूसरी बात है कि उन उपलब्धियों को कोई क्षुद्र प्रयोजनों में बाजीगरी जैसे कोतुक-कौतूहल दिखाए अथवा उसके साथ जन समस्याओं के हितार्थ लोक कल्याण के महान प्रयोजन पूरा कर सके। युग परिवर्तन की इस बेला में ऐसी संग्रहीत, परिष्कृत और प्रखर आत्मशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता समझी गई है।



**मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।**